MHI-03

इतिहास-लेखन

आधुनिक काल में इतिहास लेखन की दृष्टियाँ-1

4

"शिक्षा मानव को बन्धनों से मुक्त करती है और आज के युग में तो यह लोकतंत्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्तगत विषमताओं को दूर करते हुए मनुष्य को इन सबसे ऊपर उठाती है।"

- इन्दिरा गांधी

"Education is a liberating force, and in our age it is also a democratising force, cutting across the barriers of caste and class, smoothing out inequalities imposed by birth and other circumstances."

– Indira Gandhi

इन्दिरा गाँधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

MHI-03
इतिहास-लेखन

खंड

4

आधुनिक काल में इतिहास-लेखन की दृष्टियाँ -1

कार्यक्रम संयोजक : प्रो. ए. आर. खान

पाठ्यक्रम सम्पादक : प्रो. सब्यसाची भट्टाचार्य

पाठ्यक्रम संयोजक : डॉ. शशिभूषण उपाध्याय

खंड निर्माण दल

इकाई संख्या	इकाई लेखक	इग्नू संकाय
इकाई 12	डॉ. शशिभूषण उपाध्याय इतिहास संकाय इग्नू, नई दिल्ली	डॉ. शशिभूषण उपाध्याय (संरचना और विषय संपादन)
इकाई 13	प्रो. अशोक सेन पूर्व-प्रोफेसर इतिहास सेंटर फॉर स्टडीज़ इन सोशल साइंस कलकत्ता	**अनुवाद** श्री आनंद स्वरूप वर्मा
इकाई 14	प्रो. हरबंश मुखिया सेंटर फॉर हिस्टारिकल स्टडीज़ जे.एन.यू., नई दिल्ली	

सामग्री निर्माण		आवरण	पांडुलिपि निर्माण
श्री बी. नटराजन	उपकुलसचिव (प्रकाशन)	ग्राफिक प्वाइंट, नई दिल्ली	श्री प्रतुल वशिष्ठ
श्री जितेन्द्र सेठी	सहा. कुलसचिव (प्रकाशन)		
श्री अजीत कुमार	अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)		

अप्रैल, 2009 (पुनर्मुद्रित)

ISBN-81-266-2411-6

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय मैदान गढ़ी नई दिल्ली-110068 से प्राप्त की जा सकती है।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंगः राजश्री कम्प्यूटर्स, V-166A, भगवती विहार, उत्तम नगर नई दिल्ली-110059

मुद्रकः गीता ऑफसेट प्रिंटर्स, सी-90, ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110020

खंड 4 आधुनिक काल में इतिहास-लेखन की दृष्टियाँ-1

पाठ्यक्रम के इस खंड में हम उन तीन महत्त्वपूर्ण इतिहास-लेखन से संबंधित परंपराओं पर ध्यान देंगे जो पश्चिमी यूरोप में 19वीं और 20वीं सदी में विकसित हुए। यह वह काल था जब तकनीक विकास, औद्योगिक और वित्तीय पूँजीवाद का स्थायीकरण तथा यूरोप में 17वीं सदी से विकसित हो रहे विज्ञान का दृढ़ीकरण हो रहा था।

इस खंड में जिन दार्शनिक पद्धतियों का विवेचन किया गया है उनमें प्रत्यक्षवाद और मार्क्सवाद इतिहास-लेखन को एक ''वैज्ञानिक'' आधार देना चाहते थे, हालाँकि इस वैज्ञानिक इतिहास के बारे में उनकी धारणाएँ अलग-अलग थीं। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में इतिहास-लेखन की तीसरी महत्त्वपूर्ण पद्धति का आविर्भाव हुआ जिसका प्रेरणा-स्रोत कुछ हद तक मार्क्सवाद था। इसको *अनाल* स्कूल के नाम से जाना गया। यह नाम फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित एक पत्रिका *अनाल दि स्तुआर इकोनोमिक ए सोसिआल* से लिया गया। इतिहास-लेखन की इन तीनों धाराओं के कारण आधुनिक काल में इतिहास में शोध और लेखन का ढर्रा मूलभूत रूप से परिवर्तित हो गया।

ओगुस्त कोंत द्वारा प्रतिपादित प्रत्यक्षवादी दर्शन इतिहास को समाज विज्ञान की तरह प्रतिष्ठा दिलाने के लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रयास था। प्रत्यक्षवादी धारा के अनुसार, इतिहास का आगमन धार्मिक और आधिभौतिक अवस्थाओं के बाद होता है। कोंत का मानना था कि इतिहास के वैज्ञानिक अध्ययन से सामाजिक विकास के कुछ सामान्य नियम प्रतिपादित किए जा सकते हैं। प्रत्यक्षवादी दर्शन उस अनुभववादी परम्परा से घनिष्ठ है जिसकी जड़ें अतीत में थीं। लेकिन पुरानी अनुभववादी दृष्टि को जार्ज बर्कले, डेविड ह्यूम और जॉन स्टुआर्ट मिल जैसे आधुनिक दार्शनिकों ने काफी बदल दिया। इतिहास-लेखन पर अनुभववाद का प्रभाव लिओपोल्ड फान रानके और उनके अनुयायियों के शोध और लेखन में देखा जा सकता है। उनकी पद्धति के केन्द्र में यह धारणा थी कि अतीत को वर्तमान की दृष्टि से न देखकर अतीत के मापदंड से ही देखा जाना चाहिए। रानके के समय से इतिहास-लेखन में जिन बातों पर जोर दिया जाने लगा वे हैं: स्रोतों की प्रामाणिकता, सही संदर्भों और स्रोतों का विवरण तथा ''वस्तुनिष्ठता'' का आदर्श।

एक ओर जहाँ रानकेवादी इतिहास-लेखन का प्रभाव बढ़ता गया, वहीं परंपरागत इतिहास-लेखन की एक और भी अधिक मूलगामी आलोचना का विकास हुआ। यह इतिहास की मार्क्सवादी दृष्टि थी। मार्क्सवादी परंपरा कई अवस्थाओं से होकर गुजरी इस खंड में हम ''शास्त्रीय'' मार्क्सवाद का आकलन प्रस्तुत करेंगे। कार्ल मार्क्स द्वारा वर्ग-संघर्ष और उत्पादन संबंधों से जुड़ी ऐतिहासिक धारणाओं की स्थापना तथा इस पद्धति का यूरोप के इतिहास के संदर्भ में मार्क्स और ऐंगल्स द्वारा अपनी रचनाओं में प्रयोग इस इकाई (इकाई 13) के विषय होंगे। खंड 6 में हम इस बात पर चर्चा करेंगे कि कैसे मार्क्सवादी परंपरा ने भारत में इतिहास-लेखन को प्रभावित किया।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान और उसके बाद रानकेवादी विचारधारा द्वारा प्रतिपादित इतिहास में ''वस्तुनिष्ठता'' के आदर्श पर सवाल उठने खड़े हो गए; यह महसूस किया जाने लगा कि विभिन्न राष्ट्र, जो 1914 और 1918 के दौरान युद्धरत थे, राष्ट्रीय इतिहास का अपना-अपना विवरण दे रहे थे; प्रत्येक इतिहासकार अपने इतिहास को वस्तुनिष्ठ और अभिलेखागार के स्रोतों पर आधारित बता रहा था, फिर भी उसकी विवेचना अन्य देश के इतिहासकारों से बिल्कुल अलग थी। इसके अलावा, उनका लेखन राज्य द्वारा अपने हित में संग्रहित स्रोतों पर मुख्य रूप से आधारित था। इतिहास-लेखन के इस परिप्रेक्ष्य में वे दीर्घावधि प्रक्रियायें शामिल नहीं थीं जो लोगों के सामाजिक और आर्थिक जीवन को प्रभावित करती हैं। इन असंतोषों ने इतिहास की एक नई दृष्टि का प्रादुर्भाव किया जो *अनाल* स्कूल के नाम से जानी जाती है। मार्क ब्लाक और लूशिएँ फेबव्र द्वारा शुरू किया गया इस *अनाल* स्कूल ने बीसवीं सदी में अनेक इतिहासकारों की प्राथमिकताएँ बदल दिया और इतिहास-लेखन को बहुत प्रभावित किया।

इकाई 12 प्रत्यक्षवादी परंपरा

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना

जिसे हम आम तौर पर इतिहास का प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण समझते हैं, वह बुनियादी तौर पर तीन परंपराओं से निकला है:

क) फ्रांस के विचारक ओगुस्त कोंत द्वारा प्रतिपादित प्रत्यक्षवादी दर्शन;

ख) अनुभववादी परंपरा जिसका एक लंबा इतिहास है लेकिन जिसकी जड़ें ब्रिटिश दार्शनिक और ऐतिहासिक परंपरा में काफी गहराई तक हैं; और

ग) इतिहास-लेखन की परंपरा जिसने जर्मन इतिहासकार लिओपोल्ड फॉन रानके द्वारा स्थापित दिशा-निर्देशों का पालन किया।

इन तीनों परंपराओं ने विभिन्न रूपों में मिलकर जो कुछ दिया उसे ई.एच.कार ने 'इतिहास की आम अवधारणा' कहा। दार्शनिक तौर पर इन तीनों परंपराओं को हम एक नहीं कह सकते। वस्तुत: इनके बीच अनेक अंतर्विरोध हैं। कभी-कभी ये अंतर्विरोध, मसलन प्रत्यक्षवाद और अनुभववाद के बीच, एक दूसरे के बिल्कुल विरोधी प्रतीत हो सकते हैं। मिसाल के तौर पर अगर प्रत्यक्षवाद ने सार्वभौमिक सिद्धांतों, सामान्य नियमों की रचना की और इतिहास के प्रति उसका एक प्रयोजनमूलक दृष्टिकोण था तो अनुभववाद ने महान सैद्धांतिक योजनाओं पर संदेह व्यक्त किया और इंद्रियजन्य अनुभूति तथा इससे अर्जित ज्ञान पर भरोसा किया। फिर भी इतिहास-लेखन के क्षेत्र में इनके अनुयायियों और आलोचकों दोनों द्वारा इनका अदल बदल कर इस्तेमाल किया गया। इस इकाई में हम इस बात पर विचार करेंगे कि इन तीनों प्रवृत्तियों ने इतिहास-लेखन पर अलग-अलग और संयुक्त रूप से कैसे प्रभाव डाला। सबसे पहले हम प्रत्यक्षवादी दर्शन पर चर्चा करेंगे।

12.2 ओगुस्त कोंत और प्रत्यक्षवादी दर्शन

ओगुस्त कोंत (1798-1857) एक फ्रांसीसी विचारक थे जिन्होंने प्रत्यक्षवादी दर्शन की शुरुआत की। उन्होंने प्रबोधन (एनलाइटेनमेंट) की परंपरा का पालन किया जो सार्वभौमता में विश्वास करती है। प्रबोधनवादी विचारकों की धारणा थी कि अगर कोई बात किसी एक समाज पर लागू हो सकती है तो वह अन्य समाजों के लिए भी वैध है। इसलिए उन्होंने सोचा कि सार्वभौम नियम

बनाना संभव है जो समूचे विश्व के लिए वैध होगा। कोंत ने भी इस सार्वभौम सिद्धांत का समर्थन किया और व्यक्तिवाद का विरोध किया जिसे रूमानी विचारधारा वाले प्रचारित करते थे। कोंत 1814 से 1824 के बीच एक आदर्शदर्शी समाजवादी हेनरी संट-साइमन (1760-1825) के शिष्य थे।

सेंट साइमन के अलावा उन पर जॉन लॉक (1632-1704), डेविड ह्यूम (1711-1776) और इमैनुअल कांट (1724-1804) का भी प्रभाव था। इन सारे प्रभावों ने दर्शन की उनकी अपनी प्रणाली विकसित करने में मदद पहुँचाई। उन्होंने जो पुस्तकें लिखीं वे थीं : *दि कोर्स ऑफ पॉजिटिव फिलासफी* और *दि कोर्स ऑफ पॉजिटिव पॉलिटिक्स*। पहली पुस्तक 1830 से 1842 के बीच छः खंडों में प्रकाशित हुई और इसी पुस्तक में उन्होंने इतिहास के बारे में अपने सैद्धांतिक मॉडल की व्याख्या की।

कोंत के अनुसार सभी अवधारणाओं और ज्ञान का क्रमिक विकास तीन चरणों से गुजरता है। क्रमानुसार देखें तो उनकी स्थिति इस प्रकार होती है — 'धार्मिक या काल्पनिक; आधिभौतिक या अमूर्त और वैज्ञानिक या प्रत्यक्ष।' इन तीन चरणों में से पहला चरण प्राथमिक चरण है जिसके जरिये मानव मस्तिष्क को अनिवार्य रूप से गुजरना होता है। दूसरा चरण संक्रमणकालीन है और तीसरा चरण मानवीय समझदारी की अंतिम एवं 'तय तथा निश्चित अवस्था' है। कोंत ने इतिहास में इस विचार के विकास तथा बचपन से वयस्क अवस्था तक पहुँचने के किसी व्यक्ति के विकास में भी एक समानता देखी। उनके अनुसार पहली दो अवस्थाएँ अब अतीत बन गयी थीं जबकि तीसरी अवस्था अर्थात प्रत्यक्ष अवस्था उभर रही थी।

कोंत के विचार से इस प्रत्यक्ष अवस्था पर विज्ञान और उद्योग का प्रभुत्व था। इस युग में धर्मशास्त्रियों और पुरोहितों का स्थान वैज्ञानिकों ने ले लिया था और व्यापारियों सहित उद्योगपतियों, प्रबंधकों और महाजनों ने योद्धाओं का स्थान ले लिया था। कोंत का विश्वास विज्ञान की पूर्ण सार्थकता में था। प्रत्यक्ष अवस्था में विभिन्न परिघटनाओं के नियमों की तलाश होती है। कोंत ने कहा कि 'ज्ञान के साधन हैं तर्कशीलता और निरीक्षण।' अंततोगत्वा अलग-थलग पड़ी सभी परिघटनाओं और घटनाओं को कुछ सामान्य नियमों से जोड़ना होता है। कोंत के विचार से प्रत्यक्षवादी प्रणाली परिपूर्णता को प्राप्त कर सकती है बशर्ते यह 'सभी परिघटनाओं को किसी एक आम तथ्य के विशिष्ट पहलुओं के रूप प्रस्तुत करे। मिसाल के तौर पर गुरुत्वाकर्षण।'

इसलिए प्रत्यक्षवाद ने यह माना कि ज्ञान को निरीक्षण के जरिए पैदा किया जा सकता है। इस मामले में प्रत्यक्षवाद और अनुभवजन्य परंपरा में बहुत ज़्यादा समानता है क्योंकि अनुभवजन्य परंपरा ने ऐंद्रिक अनुभूति की भूमिका पर जोर दिया है। इस प्रकार निरीक्षण और अनुभूति को अत्यंत महत्त्वपूर्ण और बुनियादी क्रिया माना गया है। इस प्रक्रिया के प्रतिफल के रूप में तथ्य आते हैं। तो भी अत्यंत बुनियादी स्तर पर देखें तो प्रत्यक्षवादी दर्शन का व्यक्तिवादी तथ्यों से कोई सरोकार नहीं है। उलटे वे सामान्य नियमों में विश्वास करते हैं। इन नियमों को 'मेथड ऑफ इंडक्शन' अर्थात् आगमन की पद्धति के जरिए तैयार किया जा सकता है अर्थात् पहले तो निरीक्षण और अनुभूति के जरिए तथ्यों को स्थापित करना और उनके बीच समानता के जरिए कानून का निर्माण करना। इसलिए प्रत्यक्षवादियों के लिए सामान्य नियम एंद्रिक अनुभूति से प्राप्त तथ्यों का समूह मात्र हैं। इस प्रकार तथ्यों का निर्धारण एंद्रिक अनुभूति से किया जाता है और फिर प्रयोगों के जरिए इनकी जाँच की जाती है जिनसे अंततः सामान्य नियमों का निर्माण होता है। ये सामान्य नियम विज्ञान के नियमों की ही तरह मानव विकास के बुनियादी नियमों से संबंधित हैं। एक बार इनकी खोज हो जाने (और सूत्रबद्ध कर लिए जाने) के बाद इन नियमों का इस्तेमाल समाज के विकास के तरीके में सुधार करने तथा इनके बारे में पूर्वानुमान लगाने के लिए किया जा सकता है। इस तरह की किसी योजना में व्यक्तिगत तथ्यों या यों कहें कि मानव समुदायों का

कोई अर्थ नहीं है। इसलिए कोंत ने इतिहासकारों को महज तथ्यों को बटोरने वाला कहा जिसकी, सामान्य नियमों की जानकारी हो जाने के बाद, उनके लिए कोई प्रासंगिकता नहीं रह जाती।

कोंत की दार्शनिक प्रणाली में तीन प्रमुख पूर्व स्थापनाएँ थीं :

1) उन्होंने निष्कर्ष निकाला की औद्योगिक समाज, जिसे पश्चिमी यूरोप ने नेतृत्व दिया था, समूचे विश्व के भावी समाज के लिए एक मॉडल था।

2) उनका विश्वास था कि वैज्ञानिक चिंतन, जिसे वह प्रत्यक्षवादी दर्शन कहते थे, विज्ञान और समाज दोनों पर लागू किए जा सकते थे। इसके अलावा उनकी यह भी सोच थी कि यह चिंतन और अर्थापत्ति द्वारा प्रत्यक्षवादी दर्शन शीघ्र ही समूचे विश्व में और सभी समाजों में मौजूद पाया जाएगा।

3) कोंत का मानना था कि मानव प्रकृति हर जगह एक जैसी है। इसलिए उनके द्वारा ढूँढ़े गए विकास के सामान्य नियमों को सभी समाजों पर लागू करना संभव है।

इनमें से कुछ विचार कोंत के युग में आम थे। इस विश्वास को कि धर्म का युग समाप्त हो गया है और विज्ञान तथा उद्योग का युग आ पहुँचा है, अनेक लोग मानते थे।

कोंत के मुख्य विचार दो स्रोतों से उद्‌भूत थे – नियतत्ववाद (डेटरमिनिज़्म) के सिद्धांत से जो फ्रांस के राजनीतिक दार्शनिक मोंतेस्क्यू (1689-1755) के विचारों में पाए जाते थे तथा एक अन्य फ्रांसीसी दार्शनिक कोंदरसेत (1743-1794) द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत कि कुछ निश्चित चरणों में अनिवार्य रूप से प्रगति होती है। इस प्रकार रेमंड आरों के शब्दों में कोंत की केन्द्रीय थीसिस को इस प्रकार कहा जा सकता है :

> 'सामाजिक परिघटनाएँ पक्के तौर पर नियतत्ववाद के अधीन होती हैं जो मानव समाजों के अनिवार्य विकास के रूप में सक्रिय रहती हैं — एक ऐसे विकास के रूप में जो खुद भी मानव मस्तिष्क की प्रगति से संचालित होती है।'

इस सिद्धांत से लैस होकर कोंत ने मानव जगत में एक बुनियादी ढर्रा ढूंढना शुरू किया जो हर चीज की व्याख्या कर सके। इस प्रकार उनके अनुसार 'हमारे सभी ऐतिहासिक विश्लेषणों की अंतिम परिणति एक निश्चित रूपरेखा के अनुसार मानव इतिहास की विभिन्न घटनाओं के बीच तर्कपूर्ण समन्वय' पर आधारित होगा।

कोंत द्वारा तय की गयी प्रत्यक्षवादी पद्धति तथ्यों और आंकड़ों के पर्यावलोकन में है, उनकी पुष्टि प्रयोगों के जरिए की जानी है जो अंततः सामान्य नियमों की स्थापना में सहायक होगी। इस पद्धति को विज्ञान में तथा समाजशास्त्र, इतिहास आदि जैसे मानविकी में लागू किया जाना था।

इस प्रकार इतिहासकारों के लिए कोंत की पद्धति के निम्नांकित निहितार्थ हो सकते हैं :

1) विज्ञान की तरह ही इतिहास कुछ सामान्य नियमों के अधीन है जो मानव विकास की प्रक्रिया की व्याख्या कर सकते हैं।

2) मानव मस्तिष्क कुछ निश्चित अवस्थाओं के जरिए आगे बढ़ता है जो सभी समाजों और संस्कृतियों के लिए अपरिहार्य हैं।

3) इतिहास की धारा को बदलना अकेले किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के बस में नहीं है।

4) कोंत जिस आगमनात्मक प्रणाली में विश्वास करते थे वह विज्ञानों पर लागू होने योग्य थी जिसमें तथ्यों का निरीक्षण, प्रयोग और फिर सामान्य नियमों का सूत्रीकरण इतिहास लेखन पर भी लागू किया जाना चाहिए।

12.3 अनुभववादी परंपरा

'अनुभववाद' (इंपिरीसीजम) ग्रीक भाषा के शब्द 'इम्पीरिया' से लिया गया है जिसका अर्थ होता है 'अनुभव'। दर्शन शास्त्र में इसका अर्थ यह है कि सभी ज्ञान अनुभव पर आधारित है और विश्व के सभी ज्ञान का औचित्य अकेले अनुभव के जरिए ही साबित किया जा सकता है। अनुभववादियों के अनुसार परंपरा, अनुमान, सैद्धांतिक तर्कप्रणाली अथवा कल्पना के जरिए जो ज्ञान अर्जित किया जाता है वह ज्ञान का उचित स्वरूप नहीं है। इसलिए धार्मिक प्रणालियों, आधिभौतिक अनुमानों, नैतिक उपदेशों तथा कला और साहित्य से उद्‌भूत ज्ञान की पुष्टि नहीं की जा सकती है और इसलिए यह विश्वसनीय नहीं है। अनुभववादियों का मानना है कि ज्ञान का वैध स्वरूप वही हो सकता है जिसकी सत्यता की पुष्टि की जा सके। अनुभववादी और प्रत्यक्षवादी दोनों का यह मानना है कि केवल पर्यावलोकन योग्य विश्व, जिसे देखा जा सके, वास्तविक ज्ञान का स्रोत प्रदान कर सकता है। इनमें भौतिक वस्तुओं के रूप में वे पाठ शामिल हैं जो ज्ञान का अंश बन सकते हैं। वे आधिभौतिक, पुष्ट न किए जाने योग्य और जाँच न किए जाने योग्य ज्ञान की पद्धति से इनकार करते हैं।

अनुभववाद का एक लम्बा इतिहास है। पश्चिमी दार्शनिक परंपरा में एकदम शुरुआती दिनों के अनुभववादी ग्रीक भविष्यवेत्ता थे जिन्होंने अपने अन्वेषण के लिए कुछ ठोस चीजों को केन्द्र बनाया था। अन्य अनेक ग्रीक दार्शनिकों की तरह उन्होंने अनुमानों पर भरोसा नहीं किया। अरस्तू को भी कभी-कभी अनुभववादी परंपरा का संस्थापक माना जाता है लेकिन उन्हें उन परंपराओं का भी संस्थापक होने का कुछ लोग दावा कर सकते हैं जो परंपराएँ अनुभववाद के विलोम हैं। मध्यकालीन यूरोप में थामस एकिनस ज्ञान के स्रोत के रूप में इन्द्रियों की श्रेष्ठता को महत्त्वपूर्ण मानते थे। उनका कहना था कि 'मेधा में ऐसी कोई चीज नहीं है जो पहले बोध में न हो।'

ब्रिटेन में बहुत शक्तिशाली अनुभववादी परंपरा थी। 16वीं शताब्दी में फ्रांसीस बेकन ने विश्वास व्यक्त किया था कि विश्व की सही-सही तस्वीर पर्यावलोकित आँकड़ों को जुटाकर ही तैयार की जा सकती है। उन्होंने दार्शनिक प्रश्नों को वैज्ञानिक आधार पर हल करने की कोशिश की। 17वीं शताब्दी में जान लॉक प्रमुख अनुभववादी दार्शनिक थे। ब्रिटेन के अन्य महत्त्वपूर्ण अनुभववादी दार्शनिकों में जॉर्ज बर्कले (1685-1753) डेविड ह्यूम (1711-1776) और जॉन स्टुवर्ट मिल (1806-1873) हैं। अनुभववाद के सिद्धांत की मान्यता है कि हमारी इन्द्रियाँ (आँख, कान, नाक इत्यादि) चीजों और विश्व की घटनाओं के लिए दर्पण का काम करती हैं। उनके प्रभावों के आधार पर हम विश्व को समझते हैं और वस्तुओं तथा घटनाओं के बीच संबंध स्थापित करते हैं। अपनी सभी विशिष्टताओं में यह विश्व वही होता है जिस तरह इसे हम भाषा में वर्णित करते हैं। इस प्रकार जब हम कहते हैं 'आलू' तो यह निश्चित तौर पर प्रकृति की एक भौतिक वस्तु का परिचय देता है।

कहा जा सकता है कि अनुभववाद ने निम्नांकित विचारों को जन्म दिया:

1) वास्तविक विश्व जैसा कि हम अनुभव करते हैं, कुछ ठोस वस्तुओं और घटनाओं तथा उनके गुणों और संबंधों से निर्मित है।

2) व्यक्ति विशेष के अनुभव एक दूसरे से और वस्तु तथा अनुभवकर्ता की स्थिति से अलग हो सकते हैं। इस प्रकार किसी अनुभव को, उस व्यक्ति के संदर्भ से अलग करके जिसने उसकी अनुभूति की अथवा उन परिस्थितियों से अलग करके जिनमें उनकी निर्मिति हुई, बयान किया जा सकता है। इतिहास के व्यवहार के संदर्भ में इसका तात्पर्य यह हुआ कि तथ्यों को उन व्यक्तियों अथवा समूहों अथवा समाजों जिन्होंने उनकी उत्पत्ति की तथा उन शोधकर्ताओं से जिन्होंने उन्हें उद्घाटित किया, अलग किया जा सकता है।

3) कोई व्यक्ति जो वस्तु विशेष का अनुभव कर रहा है उसे एक साफ-सुथरी स्लेट की तरह होना चाहिए जो महज उस वस्तु द्वारा प्रभावित हो रहा है जिसका वह अनुभव करता/करती है। उसके प्रारंभिक अनुभव और उसकी वैचारिक उन्मुखता महत्त्वपूर्ण नहीं है। इतिहास-लेखन के संदर्भ में इसका अर्थ यह हुआ कि इतिहासकार अथवा तथ्यों को जुटाने वाले को महज उन तथ्यों से प्रभावित होना चाहिए जिसे उसने जुटाया है न कि पूर्व में स्थापित विचारधारा अथवा विश्वासों से।

4) विश्व की प्रकृति को महज आगमित सामान्यीकरण के जरिए निरूपित किया जा सकता है। तो भी इस तरह के सभी सामान्यीकरणों की पुष्टि प्रयोगों के जरिए की जानी चाहिए और अलग-अलग प्रयोगों तथा प्रयोगों में विकास के जरिए उनमें सुधार किया जाना चाहिए या उनके स्थान पर अन्य निष्कर्षों को रखा जाना चाहिए।

5) सभी ज्ञान उन तथ्यों से हासिल किए गए हैं जिनकी प्रयोगों और महज प्रयोगों के जरिए पुष्टि की गयी है। इसलिए भावातीत जगत के बारे में अथवा किसी आधिभौतिक अनुमानों के आधार पर ज्ञान के किसी दावे का यथार्थ में कोई आधार नहीं होता।

अनुभववादियों के अनुसार इतिहासकारों को चाहिए कि अतीत के बारे में वे उन प्रमाणों पर भरोसा करें जिन्हें समकालीनों द्वारा उनके ऐंद्रिक अनुभवों के जरिए प्रस्तुत किया गया है और अगर इतिहासकार इन स्रोतों को बारीकी से देखें तो वे अतीत की एक सही तस्वीर प्रस्तुत कर सकते हैं।

12.4 रानकेवादी परंपरा

लेओपोल्ड फॉन रानके (1795-1886) उन्नीसवीं शताब्दी के जर्मन इतिहासकार थे। उन्हें आमतौर पर अनुभवात्मक इतिहास-लेखन का जनक माना जाता है। उन्होंने ही इतिहास-लेखन की सर्वथा नयी परंपरा शुरू की जो आज भी इतिहास-लेखन का प्रमुख तरीका है। यह सही है कि रानके से पहले एडवर्ड गिबन (1737-1794) ने 1776 और 1788 के बीच प्रकाशित अपनी शानदार पुस्तक 'डिक्लाइन ऐण्ड फॉल आफ दि रोमन एम्पॉयर' के जरिए आधुनिक इतिहास के क्षेत्र में अपनी विद्वता स्थापित की थी। उन्होंने अपनी पुस्तक को उपलब्ध स्रोतों और प्रमाणों पर आधारित किया। तो भी वाल्तेयर, ह्यूम आदि जैसे अन्य लोगों के साथ जिन्होंने 18वीं शताब्दी में ऐतिहासिक अंशों को लिखा, उनकी पुस्तक में अनेक मामलों में गंभीर खामियाँ थीं। ये खामियाँ आमतौर पर 18वीं शताब्दी के यूरोप में इतिहास विषयक अनुसंधान की प्रकृति के कारण थीं। उन समस्याओं को निम्न रूप में चिन्हित किया जा सकता है :

1) पहली बात तो यह थी कि इन इतिहासकारों के अंदर मानवीय और सामाजिक व्यवहार के सार्वभौम सिद्धांतों को स्थापित करने की चिंता थी। इसके अलावा वे परिवर्तन के स्वरूपों और समाज तथा राजनीति में विकास का विश्लेषण नहीं कर सके। गिबन को छोड़कर 18वीं शताब्दी के अधिकांश इतिहासकार अनुभवात्मक विवरण देने के प्रति गंभीर नहीं थे। इतिहास के क्षेत्र में काम करने वाले अनेक लोगों के अंदर अपने स्रोतों के संबंध में आलोचनात्मक प्रवृत्ति का अभाव था। उनमें से अधिकांश ने अपने स्रोतों पर पूरा पूरा भरोसा किया और उसकी सटीकता तथा सत्यता को यूं ही मान लिया।

2) प्राथमिक स्रोतों और दस्तावेजों की अनुपलब्धता भी एक समस्या थी। अधिकांश अभिलेखागार विद्वानों के लिए खुले नहीं थे। इसके अलावा अधिकांश शासक अपने यहाँ सेंसरशिप का पालन करते थे और ऐसी पुस्तकों तथा ब्यौरों के प्रकाशन की इजाजत नहीं देते थे जिनके दृष्टिकोण से वे राजी न हों। इसी के साथ कैथोलिक चर्च भी उस समय तक बहुत शक्तिशाली था और चर्च की आलोचना करने वाली पुस्तकों के प्रकाशन को रोकने के लिए अपनी खुद की सेंसरशिप लगाने में समर्थ था।

3) इससे जुड़ी एक और समस्या विश्वविद्यालय स्तर पर इतिहास के विधिवत न पढ़ाए जाने से संबंधित थी। इसकी वजह से इतिहासकार किसी टीम की तरह काम न कर प्रायः व्यक्तिगत तौर पर काम करते थे। नतीजतन परस्पर जाँच पड़ताल करने और आलोचनाओं की जानकारी का अभाव था।

19वीं शताब्दी की शुरुआत होते-होते ऊपर बतायी गयी समस्याओं में से अनेक पर काबू पाना संभव हो सका। ऐसा फ्रांसीसी क्रांति की वजह से आए अनेक राजनीतिक सुधारों के कारण हुआ। इस महान क्रांति ने मानव स्वभाव और मानव समाज के बारे में अनेक विचारों और अवधारणाओं में परिवर्तन ला दिया। अब लोगों ने परिवर्तन और विकास को सामाजिक तथा व्यक्तिगत व्यवहार के संदर्भ में देखना शुरू कर दिया था। स्रोतों और दस्तावेजों पर भरोसा करने से पूर्व अब बहुत सावधानीपूर्वक तथा आलोचनात्मक ढंग से मूल्यांकन किया जाने लगा। इस नयी आलोचनात्मक पद्धति और स्रोत आधारित ऐतिहासिक अनुसंधान के क्षेत्र में डेनमार्क के विद्वान बार्तोल्ड जॉर्ज नीबर (1776-1831) को आम तौर पर प्रणेता माना जाता है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ रोम' लिखने के लिए विभिन्न स्रोतों से जो अध्ययन किया उसमें भाषायी अध्ययनों और पाठ के विश्लेषण की उन्नत पद्धति का इस्तेमाल किया। उनकी यह पुस्तक 1811-12 में प्रकाशित हुई थी। 1806 से नीबर ने प्रशा में काम किया था और हाल ही में स्थापित बर्लिन विश्वविद्यालय में उनकी नियुक्त हुई थी। रोमन इतिहास पर दिए गए अपने भाषणों में उन्होंने स्रोतों की आलोचनात्मक छानबीन की – खास तौर से शास्त्रीय लेखक लीवी (ईसा पूर्व 59-ईसा पूर्व 17) के कार्यों की। इसके लिए उन्होंने सर्वाधिक उन्नत फिलालोजीकल पद्धति का इस्तेमाल किया और लीवी की पुस्तक की अनेक कमजोरियों को उद्घाटित किया। नीबर ने सोचा कि इस तरह की पद्धति से समकालीन स्रोतों में पूर्वाग्रह प्रकट होगा और इससे इतिहासकारों को सही तस्वीर प्रस्तुत करने में मदद मिलेगी। उनका विश्वास था कि कलम उठाते समय हमें इस योग्य होना चाहिए कि हम ईश्वर के समक्ष जा कर कह सकें कि 'मैंने जानबूझकर अथवा ईमानदारी से छानबीन किए बिना ऐसा कुछ नहीं लिखा है जो सच न हो।'

यद्यपि इतिहास-लेखन की पद्धति विकसित करने में नीबर एक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व थे लेकिन आधुनिक इतिहास-लेखन की शुरुआत के लिए वास्तविक श्रेय रानके को दिया जाना चाहिए। 1824 में उनकी पहली पुस्तक 'दि हिस्ट्री ऑफ द लातिन एंड टयूटॉनिक नेशंस' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक की भूमिका में अपने उद्देश्य से संबंधित बयान में उन्होंने जो लिखा वह अनुभवात्मक इतिहास-लेखन के औचित्य को साबित करने वाली प्रमुख बात हो गयी:

> 'इतिहास के जिम्मे अतीत के बारे में निर्णय लेने और वर्तमान को निर्देशित करने का काम सौंपा गया है ताकि भविष्य को लाभ मिल सके। इतने महान कार्यों को सम्पन्न करने की अपेक्षा इस पुस्तक से नहीं की जा सकती। इसका उद्देश्य महज यह दिखाना है कि वस्तुतः अतीत कैसा था।'

इतिहास-लेखन के प्रति रानके के दृष्टिकोण को सारांश रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:

1) जैसा कि ऊपर उद्धृत वक्तव्य से स्पष्ट है रानके का मानना था कि अतीत को उसकी खुद की शर्तों पर समझा जाना चाहिए न कि वर्तमान की शर्तों पर। बीते युग के लोगों की प्रवृत्तियों और व्यवहार को उस काल विशेष के अध्ययन के जरिए समझने की ज़रूरत है और इसे कभी-भी इतिहासकार के अपने युग के मानकों की दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिए। रानके की राय में इतिहासकारों को अतीत का अध्ययन करते समय वर्तमान केन्द्रित सरोकारों से बचना चाहिए और यह समझने की कोशिश करनी चाहिए कि जिस काल का वह अध्ययन कर रहा है उस काल के लोगों के लिए कौन से मुद्दे महत्त्वपूर्ण थे। रानके और अनुभववादी धारा के इस विचार ने इतिहास बोध की अवधारणा की

शुरुआत की। इसका तात्पर्य यह था कि अतीत की अपनी प्रकृति है जो वर्तमान से भिन्न है। इतिहास का यह दायित्व है कि वह काल विशेष की आत्मा को उद्घाटित करे।

2) रानके एक अनुभववादी थे जिनका मानना था कि केवल ऐन्द्रिक अनुभवों के जरिए ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। अतीत का ज्ञान उन स्रोतों के जरिए हासिल किया जा सकता है जो उस काल विशेष के लोगों के अनुभवों को वस्तुगत तौर पर मूर्तिमान करते हों। इस प्रकार इतिहासकार को स्रोतों में उपलब्ध सामग्री पर ही निर्भर रहना चाहिए। इतिहासकार को अपनी कल्पनाशीलता अथवा अंत:प्रज्ञा का सहारा नहीं लेना चाहिए। अतीत के बारे में अगर कोई वक्तव्य दिया जा रहा है तो उसका संदर्भ उन स्रोतों में मिलना चाहिए।

3) लेकिन रानके स्रोतों के प्रति भी आलोचनात्मक रुख रखते थे और उन स्रोतों पर आँख मूँद कर भरोसा नहीं करते थे। वह जानते थे कि सभी स्रोतों का समान महत्त्व नहीं है। इसलिए उन्होंने स्रोतों की एक श्रेणीबद्धता की बात की। उन्होंने वरीयताक्रम में उन स्रोतों को रखा जो किसी घटना विशेष के समय मौजूद रहे हों। इन्हें प्राथमिक स्रोत कहा जाता है। इनमें भी उस घटना विशेष के भागीदारों अथवा उसके प्रत्यक्ष प्रेक्षकों द्वारा प्रस्तुत अभिलेखों को उसी काल के अन्य स्रोतों के मुकाबले वरीयता दी जानी चाहिए। इसके बाद कुछ ऐसे स्रोत हैं जो बाद में लोगों द्वारा प्रस्तुत किए गए। इन्हें अनुपूरक स्रोत कहा जाता है और घटना के अध्ययन के समय प्राथमिक स्रोतों के मुकाबले इन्हें कम महत्त्व देना चाहिए। इस प्रकार सभी स्रोतों का ठीक-ठीक तिथि निर्धारण इतिहास-लेखन का मुख्य सरोकार हो गया।

4) रानके ने संदर्भों को देने के महत्त्व पर भी बल दिया। इस तरह से सभी वक्तव्यों और उक्तियों को प्रस्तुत करते समय उन स्रोतों का पूर्व विवरण दिया जाना चाहिए जहाँ से उन्हें लिया गया है। यहाँ उन्होंने उस तकनीक को और परिष्कृत तथा व्याख्यायित किया जिसका पालन उनसे पहले गिब्बन तथा अन्य इतिहासकारों ने किया था। यह तरीका महत्त्वपूर्ण था क्योंकि इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों की दोहरी जाँच का अवसर मिल जाता था। इससे इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत दृष्टिकोणों और व्याख्याओं में संशोधन और सुधार करने का अवसर प्राप्त हो जाता था।

5) रानके ने तथ्यों और व्याख्याओं में भेद किया। उन्होंने उन तथ्यों के महत्त्व पर जोर दिया जो स्रोतों में आधारित प्रमाणों से पुष्ट होते थे। इतिहासकार का काम पहले तथ्यों को प्रस्तुत करना और फिर उनकी व्याख्या करना है। इस प्रकार रानके की राय में इतिहासकार को ऐसे स्रोतों की तलाश नहीं करनी चाहिए जो उसकी परिकल्पना की पुष्टि करे बल्कि उसे स्रोतों में उपलब्ध तथ्यों के आधार पर अपनी परिकल्पना का निर्माण करना चाहिए।

रानके ने जो लिखा वह बहुत ज़्यादा है। उन्होंने अनेक खंडों में अनेक पुस्तकें लिखीं जिनमें से सर्वाधिक चर्चित पुस्तकें कुछ ये हैं : *दि ऑटोमान एंड द स्पेनिश एम्पायर्स इन दि सिक्सटिंथ एंड सेवेंटिंथ सेंचुरीज, दि पोप्स ऑफ रोम, देयर चर्च एंड स्टेट इन दि सिक्सटिंथ एंड सेवेंटिंथ सेंचुरी और हिस्ट्री ऑफ रिफोर्मेशन इन जर्मनी।* अपनी पुस्तकों के जरिए रानके ने भावी इतिहासकारों के लिए मिसाल प्रस्तुत करने की कोशिश की।

रानके और उनके अनुयायियों ने न केवल पेशेवर इतिहास के लिए पद्धति की स्थापना की बल्कि इसको समर्थन देने वाली संस्थाओं के विकास में भी मदद पहुँचायी। रानके ने 1833 में बर्लिन विश्वविद्यालय में ग्रेजुएट सेमिनार्स की शुरुआत की जहाँ युवा शोधार्थियों को व्यवस्थित ढंग से प्रशिक्षित किया जाता था। इसने 1840 के दशक में जर्मनी में विद्वानों के एक समूह को तैयार किया जो बहुत निष्ठावान थे और पेशेवर इतिहास के लिखने में व्यस्त थे। इससे पहले भी 1823 में प्रशा की सरकार ने 'मान्यूमेंटा जर्मेनिया हिस्टोरिका' का प्रकाशन शुरू किया था। जिसने इतिहासकारों के लिए जर्मनी के मध्यकालीन इतिहास से

संबंधित सभी महत्त्वपूर्ण स्रोतों को प्रकाशित करने का प्रयास किया था। अब तक इसके 360 से भी ज़्यादा खण्ड निकल चुके हैं।

रानके ने एक ऐसे सख्त विज्ञान के रूप में इतिहास की कल्पना की थी जिसे आधिभौतिक अटकलों और मूल्य निर्णयों से मुक्त होना चाहिए। उन्होंने आगे इस बात पर ज़ोर दिया कि इतिहासकारों को अपने स्रोतों को भाषाशास्त्रीय आलोचना की कसौटी पर तौलना चाहिए ताकि सच्चाई का पता चल सके। कोंत के प्रत्यक्षवाद के विपरीत रानके ने घटनाओं की सार्वभौमिकता पर नहीं बल्कि उनकी विचित्रता पर जोर दिया। उनके लिए ठीक-ठीक ब्यौरों को देखना महत्त्वपूर्ण था न कि सामान्य नियमों पर ध्यान देना। 1848 आते आते सभी जर्मनभाषी विश्वविद्यालयों ने इतिहास-लेखन के लिए रानके की पद्धति को अपना लिया। और 1870 के बाद यूरोप के अधिकांश देशों, अमेरिका और जापान में ऐतिहासिक अध्ययनों के लिए रानके के मॉडल को स्वीकार किया गया। वैज्ञानिक इतिहास को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न भाषाओं में पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा। इस प्रकार 1859 में *हिस्टोरिसके जेत्सक्रिफ्त* नामक पत्रिका का जर्मन भाषा में प्रकाशन शुरू हुआ। इसने एक नयी प्रवृत्ति को जन्म दिया। इसके बाद इसी धारा की अनेक पत्रिकाएँ निकलीं मसलन 1876 में फ्रेंच भाषा में *रेबू हिस्टोरिक*, 1884 में इतालवी में *रिविस्ता स्तोरिका इतालियाना*, 1886 में अंग्रेजी में *हिस्टोरिकल रिव्यू* और 1895 में *अमेरिकन हिस्टोरिकल रिव्यू* आदि।

12.5 इतिहास की प्रत्यक्षवादी/अनुभववादी दृष्टि

अपने मतभेदों के बावजूद इन सभी परंपराओं के बीच जो समान बात थी वह इतिहास-लेखन के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण साबित हुई। पहली बात तो यह थी कि इन सबने यह माना कि इतिहास (समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र और अर्थशास्त्र की तरह) एक विज्ञान है और दोनों क्षेत्रों में अनुसंधान और शोध के समान तरीके अपनाए जाने चाहिए। दूसरी बात यह कि इतिहास का साबका वास्तविकता और तथ्यों से पड़ता है जो इतिहासकार के प्रत्यक्ष ज्ञान से स्वतंत्र और परे होते हैं। तीसरे, इतिहास कमोबेश एक के बाद एक घटनाओं के रूप में आगे बढ़ता है और इन घटनाओं का एक सीधा क्रम होता है।

कुछ कट्टरपंथी प्रत्यक्षवादी इतिहासकारों का यह मानना था कि प्रत्यक्ष तौर पर जिसकी अनुभूति नहीं की जा सकती उसका अस्तित्व नहीं होता है। ऐसे इतिहासकारों में फ्रांस के नूमा-देनिस फुस्तेल द कुलान और हिप्पोलाइत तेने तथा इंग्लैंड के हेनरी टॉमस बकल प्रमुख हैं। कुलान का मानना था कि जिसे प्रत्यक्ष तौर पर देखा नहीं जा सकता उसका अस्तित्व नहीं है। हिप्पोलाइत तेने ने अपनी पुस्तक 'ला ओरिजिने द ला फ्रांस कांतेम्पोरेरे' (1874-93) में इतिहास को 'विभिन्न शक्तियों के रेखागणित' के रूप में व्याख्यायित करने का प्रयास किया। बकल ने *'हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन इन इंग्लैंड'* (1857-61) में ब्रिटिश हिस्ट्री की व्याख्या जलवायु, भूगोल और सहज मनोविज्ञान के संदर्भों में करने का प्रयास किया।

मुख्यधारा की ऐतिहासिक परंपरा में इस तरह के इतिहासकारों का योगदान अपेक्षाकृत सीमित था। बस रानकेवादी और अनुभववादी परंपराएँ इतिहास-लेखन के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण साबित हुईं। महान जर्मन इतिहासकार थ्योदोर मोम्मसेन (1817-1903) रानके के अनुयायी थे। उन्हें तीन खंडों में लिखे ग्रंथ 'रोमन हिस्ट्री' के लिए प्रसिद्धि मिली। यह पुस्तक उनकी प्रकांड विद्वता का ठोस उदाहरण है। उन्होंने रोमन गणराज्य की स्थापना से लेकर इसके पतन तक का इतिहास मुद्राशास्त्रीय, भाषाशास्त्रीय और पुरालेखशास्त्रीय स्रोतों का सहारा लेकर लिखा। उनकी अन्य पुस्तकें थीं- *प्रॉविन्सेज ऑफ दि रोमन एम्पायर फ्राम सीजर टु डायोक्लेटियन* और *रोमन पब्लिक ला।* उन्होंने 'कारपस आफ लातिन इन्स्क्रिप्सन्स' नाम से एक पुस्तक का संपादन भी किया।

लॉर्ड ऐक्टन (1834-1902) इस परंपरा की एक दूसरी बड़ी हस्ती थे। उनका सर्वाधिक स्थायी महत्त्व का योगदान 'कैंब्रिज मॉडर्न हिस्ट्री' के प्रथम संस्करण के संपादन में देखा जा सकता है। ऐक्टन का मानना था कि निकट भविष्य में जब सारे तथ्यों तक पहुँच पाना संभव हो जाएगा तब अन्तिम इतिहास यानी 'अल्टीमेट हिस्ट्री' का लेखन भी संभव हो जाएगा। इस पुस्तक में जिन लोगों ने लेखन के मामले में योगदान किया था उनसे लॉर्ड ऐक्टन ने कहा था कि वे 'पूर्णता और निश्चितता की मांग को पूरा करें।' उन्होंने अपने लेखकों को लिखा:

> 'लेखकों को चाहिए कि हमारा वाटरलू इस तरह का होना चहिए जो फ्रांस और इंग्लैंड, जर्मनी और हॉलैंड के लोगों को संतुष्ट कर सके। यह ऐसा होना चाहिए कि लेखकों की सूची देखे बगैर कोई यह न कह सके कि कहाँ आक्सफोर्ड के बिशप ने अपनी कलम छोड़ दी और कहाँ से फेयरबर्न या गैस्केट, लीवरमन अथवा हेरिसन ने वह कलम थाम ली।'

इस परंपरा में इंग्लैंड के एक अन्य महत्त्वपूर्ण इतिहासकार जे.बी. बरी (1861-1927) थे। उनका भी इतिहास के वैज्ञानिक स्तर का होने में पक्की धारणा थी और उन्होंने इतिहासकारों को बराबर समझाया कि वे तथ्यों के मामले में बिल्कुल दुरुस्त रहें, पांडित्यपूर्ण हों और अपने अनुसंधान तथा प्रस्तुतीकरण में सटीक हों। उनका कहना था कि भले ही इतिहास से साहित्य अथवा दर्शन के लेखन की सामग्री मिलती हो तो भी इन दोनों से यह इसलिए भिन्न है क्योंकि यह एक विज्ञान है। उन्होंने *हिस्ट्री आफ ग्रीस* तथा *ए हिस्ट्री आफ दि लैटर रोमन एम्पॉयर* जैसी इतिहास संबंधी अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं।

इतिहास के प्रति इस दृष्टिकोण को सी.वी. लांगलुआ और चार्ल्स सैन्योबो द्वारा लिखित *इंट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ हिस्ट्री* शीर्षक पाठ्य पुस्तक में अत्यंत प्रभावशाली ढंग से साररूप में प्रस्तुत किया गया है। यह पुस्तक 1898 में प्रकाशित हुई थी। लेखकों ने इसमें घोषणा की थी कि इतिहास-लेखन की वस्तुपरकता 'का यह मतलब नहीं कि वह लोगों को खुश करे या लोगों को उनके कार्यकलापों की व्यावहारिकता का ज्ञान कराये या लोगों के अंदर भावनाओं को भड़काए बल्कि इसका उद्देश्य महज लोगों को ज्ञान देना है–शुद्ध और साधारण ज्ञान'।

हालाँकि इस दृष्टिकोण के अनेक आलोचक थे फिर भी 19वीं शताब्दी और यहाँ तक कि 20वीं शताब्दी में भी इस परंपरा का दबदबा बना रहा। अधिकांश पेशेवर इतिहासकारों ने इस प्रवृत्ति को अपनाया। अधिकांश इतिहासकार इसकी मूल अवधारणा में यकीन रखते हैं कि तथ्यों का एक पृथक और स्वतंत्र अस्तित्व है और इस भौतिक जगत से संबंधित अधिकांश ज्ञान अंततः इंद्रियों के अनुभव से ही हमें प्राप्त होता है।

12.6 आलोचनाएँ

इतिहास के प्रत्यक्षवादी और अनुभववादी दृष्टिकोणों की व्यापक आलोचना हुई है। रानके के काल से ही ऐसे इतिहासकार रहे हैं जिन्होंने इतिहास-लेखन की इस प्रवृत्ति की आलोचना की। जोहान गुस्ताव ड्रोसेन (1808-1884) ने, जो 1859 से 1884 तक बर्लिन में इतिहास के प्रोफेसर थे, रानके के इस वस्तुपरक नजरिये को 'एक नपुंसक की वस्तुपरकता' कहा। 1845 से बेसल में इतिहास के प्रोफेसर जैकब बर्कहाड्र्ट (1818-97) की कृतियों ने रानके के विकल्प में एक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। वह रानके के शिष्य थे लेकिन उन्होंने इतिहास-लेखन की रानके की पद्धति के विरुद्ध प्रतिक्रिया की और ऑगस्तिन थिएरी (1795-1856) तथा ज्यूल मिशले (1798-1874) के दृष्टिकोण का पालन किया। थिएरी और मिशले ने सीधे-सीधे अनुभववाद की आलोचना की और उन विचारों को आगे बढ़ाया जिनका संबंध 'ऐतिहासिक रोमांटिसिज़्म' की धारा से था। इतिहास-लेखन की इस प्रवृत्ति ने उन मुद्दों पर जोर दिया जिन्हें

रानकेवादियों तथा प्रत्यक्षवादियों ने खारिज कर दिया था। इस धारा से जुड़े इतिहासकारों ने इतिहास-लेखन में इतिहासकार के हस्तक्षेप के महत्त्व पर बल दिया। उनका मानना था कि इतिहासकार को जुनूनी और प्रतिबद्ध होना चाहिए न कि अनासक्त। इन्होंने तर्कबुद्धिवादी दृष्टिकोण के विपरीत इतिहास-लेखन के नैतिक पक्ष पर भी जोर दिया। सार्वभौम और सामान्य के मुकाबले स्थानीय और विशिष्ट को ज़्यादा महत्त्व दिया गया। नेताओं को महत्त्व देने के दृष्टिकोण के विपरीत समूचे समुदाय के इतिहास की समग्रता पर बल दिया गया। थिएरी ने इतिहास-लेखन का अपना उद्देश्य बताते हुए कहा था कि इसका मकसद 'कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों के नहीं बल्कि जनता के भाग्य पर विचार करना है, व्यक्तियों के नहीं बल्कि सामाजिक जीवन के साहसिक कर्मों को प्रस्तुत करना है।' इस धारा के लोग इतिहास-लेखन में साहित्यिक कौशल के महत्त्व में यकीन करते थे और उन्होंने इस पर जोर दिया कि इतिहास भी उसी तरह एक कला है जैसे विज्ञान। इन लोगों ने स्रोतों के प्रति उपासनाभाव के लिए और तटस्थ व्याख्या पर बल देने के लिए अनुभववाद की आलोचना की। इसके स्थान पर इन्होंने इतिहास-लेखन में मनोभावों और भावनाओं की भूमिका पर जोर दिया।

यद्यपि 1914 से पहले भी ऐसे अनेक इतिहासकार थे जिन्होंने वैज्ञानिक, तटस्थ और मूल्यों से मुक्त इतिहास की संभावना पर गंभीरता से सवाल उठाये थे लेकिन प्रथम विश्वयुद्ध और प्रतिफल के रूप में बाद की घटनाओं ने इस अवधारणा को हिला दिया कि ऐसे ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जो सभी राष्ट्रीयताओं के लोगों को संतुष्ट कर सकें। वस्तुत: अनेक देशों के इतिहासकारों ने ऐसे इतिहास लिखे जो अन्य देशों के इतिहासकारों की धारणाओं के विरुद्ध थे। उन्होंने घटनाओं की इस तरह व्याख्या की जो उनके अपने देशों के लिए औचित्य स्थापित कर सकें। यद्यपि इस नियम के अपवाद भी थे, तो भी कुल मिलाकर 'वैज्ञानिक' इतिहास लिखने के बजाय राष्ट्रवादी इतिहास लिखने की प्रवृत्ति रही। वस्तुत: राष्ट्रवादी इतिहासों को ही वैज्ञानिक इतिहास बताकर उनका गुणगान किया गया। 'वैज्ञानिक' और 'वस्तुपरक' इतिहास प्रस्तुत करने के रानकेवादियों और प्रत्यक्षवादियों के आदर्शों को गंभीर झटका लगा।

प्रत्यक्षवादी प्रकृति विज्ञान की पद्धतियों और 'सच्चाइयों' में यकीन करते थे। वे समाज के अध्ययन के लिए भी इन पद्धतियों को लागू करना चाहते थे इसलिए इन्होंने इन विषयों को समाज विज्ञान नाम दिया। उनका मानना था कि आगमिक पद्धतियों के इस्तेमाल से समाज के भविष्य का पूर्वानुमान संभव है जैसा कि प्रकृति विज्ञान में होता है। लेकिन 20वीं शताब्दी में प्रकृति विज्ञान के स्वरूप में भी सैद्धांतिक स्तर पर तब्दीली आयी। अल्बर्ट आइंस्टाइन का सापेक्षता का सिद्धांत 1913 में स्थापित हुआ और इसने प्रकृति विज्ञान के अनुसंधान के स्वरूप को ही बदल दिया।

इतिहास के बारे में सोच भी इन घटनाओं से प्रभावित हुई। अब प्रत्यक्षवादियों की निश्चितता और रानकेवादियों की वस्तुपरकता अतीत की दास्तान लगने लगी। अनेक विचारकों ने अब इतिहास की सापेक्षतावादी प्रकृति पर जोर दिया। जर्मनी में विलहेम डिल्थी (1833-1911), इटली में बेनेडेट्टो क्रोचे (1866-1952) और इंग्लैंड में आर.जी. कॉलिंगवुड (1889-1943) इस संदर्भ में अपेक्षाकृत ज़्यादा प्रभावशाली विचारकों में से थे। क्रोचे ने एलान किया कि 'सारा इतिहास समकालीन इतिहास है' जिसका अर्थ यह हुआ कि इतिहास हमेशा मौजूदा सरोकारों की रोशनी में लिखा जाता है और उसे उन वैचारिक उपकरणों द्वारा आकार दिया जाता है जो उस काल के इतिहासकारों के पास उपलब्ध होते हैं।

अमेरिकी इतिहासकार कार्ल बेकर ने यह कहते हुए तथ्यों के अस्तित्व से इनकार किया कि किसी इतिहासकार के लिए इतिहास के तथ्यों का तब तक अस्तित्व नहीं है जब तक वह उन्हें निर्मित नहीं करता है। कॉलिंगवुड ने एक कदम आगे बढ़ कर उकसावे वाले लहजे में कहा कि 'सारा इतिहास विचारों का इतिहास है।' ये विचारक जिस चीज को चुनौती दे रहे थे वह तथ्य

और व्याख्या के बीच आम विभेद था जिसकी ओर प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व के अधिकांश इतिहासकार प्रवृत थे।

इतिहासकारों के बीच इनके विचारों को व्यापक स्वीकृति मिली। अब इतिहासकारों की भूमिका को काफी महत्त्व मिलने लगा जैसा कि पहले स्रोतों की भूमिका को मिलता था। व्याख्या के काम को सदा से ही इतिहासकार का विशेषाधिकार माना जाता था। लेकिन अब यह निर्णय भी कि किन चीजों को तथ्य माना जाय, इतिहासकार का विशेषाधिकार हो गया। जैसा कि ई.एच.कार ने कहा है, 'इन बुनियादी तथ्यों को स्थापित करने की आवश्यकता की जिम्मेदारी अब खुद तथ्यों की गुणवत्ता पर नहीं बल्कि इतिहासकार के पूर्व निर्णय पर थी।' अब तथ्य खुद-ब-खुद नहीं बोलते थे जैसा कि अनुभववादियों के मामले में होता था। उन्हें अब इतिहासकार की भाषा में बोलना पड़ता था। ई.एच.कार को एक बार फिर उद्धृत किया जाय:

> 'तथ्य तभी बोलते हैं जब इतिहासकार उनसे ऐसा करने के लिए कहते हैं, इतिहासकार ही तय करता है कि किस तथ्य को और किस क्रम या संदर्भ में बोलने देना है... कोई भी तथ्य एक बोरी की तरह है - जब तक आप उसमें कुछ भरेंगे नहीं, वह खड़ा नहीं होगा।'

ई.एच.कार इन विचारों को इतिहास के कॉलिंगवुड विचार की तरह प्रस्तुत करते हैं। वह खुद अपेक्षाकृत ज़्यादा सतर्क दृष्टिकोण अपनाते हैं जो तथ्यों और इतिहासकारों को समान महत्त्व देता है। अधिकांश कार्यरत इतिहासकार आमतौर पर इसी दृष्टिकोण को अपनाते हैं।

12.7 सारांश

इस इकाई में हमने इतिहास-लेखन की प्रत्यक्षवादी परंपरा से आपको परिचित कराने का प्रयास किया है। इस परंपरा में वस्तुत: तीन भिन्न विचार-परंपराएँ हैं- ओगुस्त कोंत द्वारा प्रतिपादित प्रत्यक्षवादी दर्शन, लिओपोल्द फॉन रानके द्वारा शुरू की गयी इतिहास-लेखन की परंपरा और अनुभववादी परंपरा जिसका ब्रिटेन में मुख्य रूप से चलन है। इन तीनों परंपराओं की अंत:क्रिया ने इतिहास को वैज्ञानिक आधार पर लाने का प्रयास किया। इस परंपरा ने दावा किया कि स्रोतों का काफी महत्त्व है, तथ्यों का इतिहासकार से स्वतंत्र अस्तित्व है, तटस्थता एक वांछित लक्ष्य है, इतिहास-लेखन में पूर्ण वस्तुपरकता संभव है और इतिहास को विज्ञान माना जा सकता है। इतिहास के इस दृष्टिकोण की आलोचना 19वीं शताब्दी में भी बर्कहार्ड्ट जैसे इतिहासकारों और विल्हेम डिल्थी जैसे दार्शनिकों ने की। लेकिन ज़्यादा गंभीर चुनौती 20वीं सदी की शुरुआत में मिली। क्रोचे, कार्ल बेकर और कॉलिंगवुड जैसे विचारकों ने वैज्ञानिकता, तटस्थता और वस्तुपरकता के इस तरह के दृष्टिकोण की बुनियाद पर ही सवालिया निशान लगाया। उन्होंने इतिहासकार से स्वतंत्र तथ्यों के अस्तित्व से इनकार किया और इतिहास-लेखन में व्याख्या को अत्यधिक महत्त्व दिया। पूर्व सापेक्षता के ऐसे दृष्टिकोण उन अधिकांश इतिहासकारों के लिए भी मददगार नहीं हुए जिन्होंने अपेक्षाकृत ज़्यादा संतुलित दृष्टिकोण अपनाना चाहा जिसमें तथ्यों और इतिहासकारों दोनों को ही महत्त्व मिला।

12.8 अभ्यास

1) प्रत्यक्षवाद और अनुभववाद में कौन सी भिन्नताएँ और समानताएँ हैं?
2) लिओपोल्ड फॉन रानके कौन था? इतिहास पर उनका दृष्टिकोण बताएँ।
3) इतिहास के रानकेवादी दृष्टिकोण के सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं की चर्चा करें।

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

ई.एच.कार, *व्हाट इज़ हिस्ट्री?* (हार्मड्सवर्थ, न्यूयार्क, पेंग्विन, 1977 (1961)

सी.बेहन मैकुला, *दि ट्रुथ ऑफ हिस्ट्री* (लंदन, न्यूयार्क, रुतलेज, 1998)

सी.बेहन मैकुला, *दि लॉजिक ऑफ हिस्ट्री* (लंदन, न्यूयार्क, रुतलेज, 2004)

आर्थर मारविक, *दि नेचर ऑफ हिस्ट्री* (न्यूयार्क, पालग्रेव, 1989 (1970)

स्टिफेन डेविस, *इंपीरिसिज्म ऐण्ड हिस्ट्री* (न्यूयार्क, पालग्रेव, 2003)

रेमण्ड आरों, *मेन करेण्ट्स इन सोशियोलॉजिकल थाट-1* (लंदन, न्यूयार्क, पेंग्विन, 1965)

मौरिस मैण्डेलवाम, *हिस्ट्री, मैन ऐण्ड रीजन* (बाल्टीमोर ऐण्ड लंदन, दि जॉन हॉपकिन्स प्रेस, 1971)

केनेथ थॉम्पसन और जेरेमी टनस्टाल (सं.), *सोशियोलॉजिकल पर्सपेक्टिव्स,* (हार्मड्सवर्थ, न्यूयार्क, पेंग्विन, 1984 (1971)

इकाई 13 शास्त्रीय मार्क्सवादी परंपरा

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने इतिहास के प्रत्यक्षवादी/अनुभववादी दृष्टिकोण के बारे में पढ़ा। इतिहास-लेखन में इसके मुख्य प्रणेता जर्मनी में रानके और मोमसेन, इंग्लैंड में ऐक्टन, बरी और हकल तथा फ्रांस में कुलान और तेने थे। इसके अलावा समूची दुनिया में और भी इतिहासकार थे जो इस दृष्टिकोण को मानते थे। 19वीं और 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में इतिहास-लेखन का यह सबसे प्रभावशाली स्कूल था। लेकिन बाद के उन इतिहासकारों के लिए जो मानव अस्तित्व के अन्य क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहते थे, राजनीतिक और प्रशासनिक इतिहास पर केन्द्रित इसका नजरिया अत्यंत संकीर्ण था। इसके अलावा 20वीं सदी के इतिहासकारों ने अतीत को अनुभववादी इतिहासकारों के मुकाबले भिन्न दृष्टिकोण से देखा था। इसके फलस्वरूप इतिहासकारों की एक बड़ी संख्या द्वारा इतिहास का मार्क्सवादी दृष्टिकोण अपनाया गया। वस्तुतः 20वीं सदी के इतिहास-लेखन में इतिहास के प्रति मार्क्सवादी दृष्टिकोण को सर्वाधिक महत्त्व मिला। इस इकाई में हम इस परंपरा की स्थापना के बारे में बातचीत करेंगे। इसके लिए मार्क्स के बाद उस परंपरा का पालन करने वाले लोगों के साथ-साथ हम कार्ल मार्क्स की कृतियों पर भी विचार करेंगे।

कार्ल मार्क्स (1818-83) अनेक कारणों से काफी प्रसिद्ध हैं। उन्हें वैज्ञानिक समाजवाद अथवा साम्यवाद का स्थापक माना जाता है। इसका सीधा संबंध उनकी विशिष्ट दार्शनिक अवस्थिति से है जिसने मनुष्य के सामाजिक जीवन और चेतना की आर्थिक तथा गैर आर्थिक शक्तियों के बीच अथक अंतक्रिया के संदर्भों में इतिहास की एक अभिनव समझ पैदा की। मार्क्स ने तर्क दिया कि किस प्रकार इन सारी शक्तियों की सतत् क्रिया से एक वर्ग विहीन मानव समाज की संभावना के द्वार खुलते हैं। मनुष्य द्वारा मनुष्य के हर तरह के शोषण से मुक्त होकर एक साम्यवादी समाज उन सभी सामाजिक कारणों की समाप्ति सुनिश्चित करता है जिसकी वजह से अलगाव और मानवीय अधःपतन की स्थिति आती है।

13.2 अति आदर्शवाद (यूटोपिया) और विज्ञान

मार्क्स और ऐंगल्स के समय से बहुत पहले से ही समाजवादी विचार की एक परंपरा रही है। इतिहास में जो पूँजीवादी क्रांतियाँ हुई हैं उनके साथ प्रायः मेहनतकश किसानों और मजदूरों का एक बड़ा तबका जुड़ा होता था जो सामंती व्यवस्था की समाप्ति से परे एक ऐसे

रूपांतरण की कल्पना करता था जो सत्ता और संपत्ति के पूँजीवादी कब्जे तक सीमित नहीं थी। इस सिलसिले में अगर एक-दो उदाहरणों को देखें तो 1647 की ब्रिटिश क्रांति में जॉन लिलबर्न और उनके अनुयायियों की भूमिका को हम याद कर सकते हैं। उन्हें 'लेवेलर्स' के रूप में जाना जाता था जिसमें छोटे किसान, दुकानदार, कम समृद्ध व्यापारी, शिल्पकार और प्रशिक्षु थे जो व्यापक आधार वाले जनतंत्र की मांग के साथ-साथ समानता के पक्षधर थे। एक दूसरा समूह 'डिगर्स' के रूप में जाना जाता था और इसका नेतृत्व गेरार्ड विंसटनले ने किया था जो न केवल राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे थे बल्कि वे भूमि के सामूहिक स्वामित्व की अपनी मांग के लिए भी संघर्षरत थे। इसके बाद 1789 की फ्रांसीसी क्रांति के दौरान ग्राकस बैबूफ (1760-97) के नेतृत्व में बाबोवाद का उदाहरण है जिन्होंने मेहनतकश वर्ग की जीवन स्थितियों को सुधारने के लिए समान लोगों के गणराज्य का लक्ष्य प्राप्त करना चाहा। निश्चय ही, यूरोप के इतिहास के सामंती काल के दौरान भी किसान विद्रोहों के कार्यक्रमों में भूमि के सामूहिक स्वामित्व का लक्ष्य एक आदर्श माना जाता था। जर्मनी के महान किसान युद्ध (1515) को टामस मुंजर (1470-1525) जैसा नेता मिला जिसने विद्रोहियों से पृथ्वी पर 'ईश्वर का राज्य' स्थापित करने का अनुरोध किया जिसका तात्पर्य एक वर्गविहीन समाज से था जो निजी परियोजनाओं से मुक्त हो और जिसमें कोई सरकार न हो। टामस मोर (1478-1535) ने इंग्लैंड में हेनरी अष्टम के शासन के दौरान 1516 ई. में 'यूटोपिया' शीर्षक से एक पुस्तक लिखी। संभवत: 18वीं सदी की समाप्ति तक समाजवादी विचार पर यह सबसे महत्त्वपूर्ण कृति थी। ग्रीक शब्द 'यूटोपिया' का अर्थ है जिसका कोई अस्तित्व न हो या कोई स्थान न हो। अधिकतर लोगों ने ऐसे सामाजिक आदर्श को व्यक्त करने के लिए चुना जो अब तक प्राप्त नहीं किया जा सका था और जो साम्यवाद, सबको शिक्षा तथा धार्मिक सहिष्णुता के सिद्धांत पर फल-फूल रहा था। बेशक मोर के विवरणों में आदर्श मानव समाज का एक बिंब अच्छी तरह प्रस्तुत किया गया था लेकिन इस तरह के आदर्श को प्राप्त करने के तरीकों और साधनों को मुख्य रूप से एक शिष्ट राजकुमार के कार्यों के जिम्मे छोड़ दिया गया था। उस समय यूटोपिया अनैतिहासिक था और यह किसी चमत्कार की ही तरह घटित हो सकता था। इस प्रकार 'यूटोपिया' शब्द ने एक ऐसे काल्पनिक समाज का अर्थ लिया जिसे कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता।

पूँजीवाद के विकास के साथ इसके विपरीत उभरते अति आदर्शवादी सामाजिक विचार विभिन्न रूपों और जटिलताओं में प्रकट हुए। इस तरह के विचारकों में थे — फ्रांस के सेंट साइमन (1760-1825), फूरिए (1772-1837), प्रुधों (1809-1865), सिसमोंदी जो फ्रांसीसी मूल के एक जर्मन-स्विस थे जो इंग्लैंड, इटली और फ्रांस की आर्थिक स्थितियों से परिचित थे; इंग्लैंड के रॉबर्ट ओवेन (1771-1859), जर्मनी के विल्हेम वेतलिंग (1808-1871)। उनके मतभेदों के बावजूद सामाजिक दृष्टिकोण के लिए एक सामूहिक समाजवादी आग्रह की ज़रूरत पर जोर दिया गया था जो सामाजिक खुशहाली के लिए व्यक्तिगत आत्महित की तलाश से सर्वथा भिन्न था। इसके अलावा इनमें से अधिकांश के अंदर राजनीति के प्रति एक तरह का अविश्वास था और मानव समुदाय से संबंधित मामलों के न्यायपूर्ण और उचित प्रबंधन सुनिश्चित के लिए वे विभिन्न विकल्पों के पक्ष में थे।

इस तरह के प्रबंधन के संचालन के लिए संस्थाओं का स्वरूप क्या हो, इस पर उनके विचार भिन्न थे। फूरिएवादियों और ओवेनवादियों ने पृथ्वी को स्थानीय समुदायों के जाल से पाट देने का विचार रखा जबकि सेंट-साइमन के अनुयायियों ने राष्ट्र-राज्य को ऐसे विशाल उत्पादक निगमों में रूपांतरित करने का प्रचार किया जिनमें वैज्ञानिकों और तकनीकी विशेषज्ञों के पास कारगर अधिकार हों ताकि वे ज़्यादा से ज़्यादा सामाजिक लाभ के लिए इच्छानुसार काम कर सकें। लंदन, पेरिस और ब्रसेल्स जैसे स्थानों में निर्वासित जर्मनों के बीच विल्हेम वेतलिंग अत्यंत

लोकप्रिय थे। जर्मन मजदूरों पर खुद उनके देश में भी उनका कम प्रभाव नहीं था। उन्होंने एक पुस्तिका लिखी-'मैनकाइंड ऐज इट इज एंड ऐज इट ऑट टू बी।' वेतलिंग बुद्धिजीवियों पर विश्वास नहीं करते थे और समाजवाद की प्राप्ति के अपने विचारों के लिए वह गरीबों को सुख देने वाले प्रवचनों तथा दुस्साहसिक राज्यनियंत्रणवाद विरोध पर भरोसा करते थे। वेतलिंग की शैली किसी धर्मोंपदेशक की थी और जनसभाओं में उनके भाषणों में आधी धार्मिक शब्दावलियाँ होती थीं।

1845-46 के आसपास जब वे अपनी पुस्तक 'दि जर्मन ऑइडियोलॉजी' की पांडुलिपि पूरी करने ही वाले थे, उसी समय मार्क्स और एंगेल्स ने एक कम्युनिस्ट करेस्पांडेंस कमेटी की स्थापना के लिए पहल किया ताकि उन दिनों यूरोप के विभिन्न देशों की राजधानियों में प्रचलित विभिन्न कम्युनिस्ट सिद्धांतों और व्यवहारों के बीच वह कमेटी एक समन्वयक का काम कर सके। ऐसे समय जब मार्क्स उत्पादन शक्तियों और उत्पादन संबंधों के बीच अंत:क्रिया के चरणों से गुजरते हुए इतिहास के बारे में अपनी समझ विकसित करने में लगे थे, समाजवादी विचार पर वेतलिंग जैसे लोगों की अभिव्यक्तियाँ किसी अज्ञानी मस्तिष्क द्वारा किया गया बचकाना सूत्रीकरण लगता था। उनके मतभेद तीखे रूप में मार्क्स के ब्रसेल्स स्थित निवास पर एक बैठक में प्रकट हुए जहाँ वह अपने परिवारसहित 1846-47 में ठहरे थे।

एक रूसी पर्यटक पी.वी.अनेनकोव ने, जो मार्क्स के निमंत्रण पर उस बैठक में मौजूद था, बैठक की कार्यवाहियों का विवरण प्रस्तुत किया (*दि एक्स्ट्राआर्डिनरी डिकेड*, 1968)। अपने उद्घाटन वक्तव्य में ऐंगेल्स में इस बात पर जोर दिया कि मजदूर वर्ग की हालत में सुधार लाने के लिए जो लोग समर्पित हैं उन सबके लिए एक ऐसे सामूहिक सिद्धांत की ज़रूरत है जो उनके झंडे का काम कर सके। यह खास तौर से उनके लिए जरूरी है जिनके पास सिद्धांत के अध्ययन के लिए समय और अवसर नहीं है। ऐंगल्स अभी अपनी दलील पूरी भी न कर पाये थे कि मार्क्स ने वेतलिंग से सवाल किया- 'वेतलिंग, यह बताइये कि आपने अपने प्रवचनों से जर्मनी में इतना शोर शराबा किया; किस आधार पर आप अपनी गतिविधि को उचित ठहराते हैं और भविष्य में आप इसे किस पर टिकाने का इरादा रखते हैं?

वेतलिंग काफी समय तक बोलते रहे, खुद को दोहराते और सुधारते हुए और बड़ी मुश्किल से निष्कर्षों तक पहुँच सके। उन्होंने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि उनका उद्देश्य नये आर्थिक सिद्धांत तैयार करना नहीं है बल्कि उन सिद्धांतों को अपनाना है जो (जैसा कि फ्रांस के अनुभव ने दिखाया) मजदूरों की आँखें खोल दे और वे अपनी भयावह स्थिति तथा अन्यायों को देख सकें जिसका उन्हें शिकार बनाना शासकों और समाज का आदर्श वाक्य बन गया है और यह शिक्षा देना कि उनके वादों पर कभी यकीन न करें और खुद पर ही भरोसा करे तथा जनतांत्रिक और कम्युनिस्ट संगठनों के साथ संगठित हों। (इस टिप्पणी को डेविड मैकलेलन की पुस्तक *कार्ल मार्क्स : हिज लाइफ ऐण्ड थॉट*, मैकमिलन, लंदन, 1973 से लिया गया है।)

मार्क्स ने वेतलिंग को आगे बोलने से रोका और व्यंग्यात्मक अंदाज में टिप्पणी की थी 'जर्मनी में किसी ठोस वैज्ञानिक विचार और सुस्पष्ट सिद्धांत के बिना मजदूरों से अपील करना वैसे ही है जैसे उपदेश देते समय खोखली बातें बोलना और यह मानकर चलना कि एक तरफ तो कोई बहुत गंभीर देवदूत है जो प्रवचन दे रहा है और दूसरी तरफ कुछ गधे हैं जिनके मुँह को बाँध दिया गया है और जो चुपचाप प्रवचन सुन रहे हैं।'

अनेनकोव की ओर संकेत करते हुए मार्क्स ने कहा कि उनके अतिथि की मातृभूमि रूस में जो पूरी तरह बबर्रता से मुक्त नहीं है, अभी भी ऐसे लोग पाए जा सकते हैं जो वेतलिंग जैसे 'संतों' के प्रवचनों पर कान लगाते हैं। लेकिन 'जर्मनी जैसे सभ्य देश में लोग शोर मचाने और जिन चीजों के लिए संघर्ष कर रहे हैं उनको नष्ट करने के अलावा अभी तक और कुछ नहीं कर सके।'

समाजवादी विचार के स्वांगीकरण पर पूरी ताकत के साथ जोर देने से संबंधित मार्क्स का एक उदाहरण देखने को मिला। वे इसे इतिहास और समाज की वैज्ञानिक समझ मानते थे जो गति और परिवर्तन के नियमों से जुड़ा है। अपने अति आदर्शवादी पूर्वजों तथा कुछ समकालीनों के विपरीत मार्क्स के लिए समाजवाद कोई नैतिकता का खेल नहीं था जिसमें लालच, घूसखोरी और शोषण जैसी बुराइयों पर प्रेम, दया और सदभाव जैसे गुणों की जीत होनी हो। 16वीं-17वीं के पुनजार्गरण काल से ही वैज्ञानिक ज्ञान और प्रयोगों ने सामाजिक उत्पादन के विस्तार और विकास के लिए मनुष्य द्वारा प्रकृति और इसके उपादानों के मानवीय इस्तेमाल में उल्लेखनीय योगदान किया था। खुद मार्क्स की दुनिया में पश्चिमी यूरोप में औद्योगिक क्रांति के लिए विज्ञान ने तकनीकी आधार प्रदान किए थे। लेकिन मानवीय चेतना और सामाजिक संबंधों के प्रति जो दृष्टिकोण था वह अभी भी वैज्ञानिक युग के पूर्व के अवरोधों से ग्रस्त था।

दूसरी तरफ स्वतंत्रता, सद्भाव और समानता के आदर्श पुरानी व्यवस्था को ध्वस्त करने के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण तो थे लेकिन वे अभी भी एक समाज और राज्य के निर्माण कार्य में सही अर्थों में समाहित नहीं हो पा रहे थे। फ्रांसीसी क्रांति का अनुभव प्रबोधन काल के दार्शनिकों के सिद्धांतों और आदर्शों की पूरी तरह रक्षा नहीं कर सका। क्रांतिकारी जैकोबिन लोगों के नेतृत्व में आतंक का राज भी लोकप्रिय संप्रभुता की नींव रखने में महत्त्वपूर्ण साबित नहीं हुआ। इसके अलावा सामंतवाद से पूँजीवाद में संक्रमण और औद्योगिक क्रांति में इसके चरम आर्थिक स्वरूप ने जबर्दस्त असमानता और अमानवीकरण को जन्म दिया जिसकी अभिव्यक्ति पूँजी-श्रमिक संबंध के नए रूप में हुई।

इन समस्याओं के प्रति एक जागरुकता की अभिव्यक्ति मार्क्स की पुस्तक 'इकॉनोमिक एण्ड फिलोसोफिकल मैनुस्क्रिप्टस' (1844) में हुई जिसे हम 'पेरिस मैनुस्क्रिप्टस' के रूप में भी जानते हैं। यह पेरिस में उन दिनों लिखी गयी थी जब अपने रेडिकल विचारों और राजनीतिक अवस्थिति के कारण मार्क्स को उनके देश से निष्कासित किया गया था और वह पेरिस में रह रहे थे। *पेरिस मैनुस्क्रिप्टस* उनके विचारों का पहला संकलन था जिसमें उन्होंने दार्शनिक विचारों और सामाजिक जीवन के आर्थिक पहलुओं की प्रस्तुति से उत्पन्न आदर्शों को एक जगह रखा था। इसमें मार्क्स ने पूँजीवादी शोषण के अंतर्गत अलग-थलग पड़े श्रम का पहली बार विश्लेषण किया था। बाद में ऐंगल्स के साथ मार्क्स ऐतिहासिक विकास और परिवर्तन के नियमों की तलाश में लग गए। समाजवादी आदर्श को वैज्ञानिक आधार देने के लिए इस तरह की खोज बहुत जरूरी थी। हम जानते हैं कि वेतलिंग के साथ बहस में मार्क्स ने कितनी सिद्दत से अपनी बातों को रखा था। शास्त्रीय मार्क्सवाद की समझ विकसित करने के लिए हमें मार्क्स और ऐंगल्स द्वारा लिखे गए बाद के ग्रंथों से प्रमुख विचारों को समझने की ज़रूरत है।

13.3 मार्क्स के विकासशील विचार

1760 से 1860 की शताब्दी को इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति के युग के रूप में जाना जाता है। इस अवधि में उत्पादन के तकनीकी आधारों में दूरगामी परिवर्तन हुआ और यह ब्रिटेन के पूँजीवादी रूपांतरण का एक चरम बिंदु था। पूँजीवादी विकास की गतिविधि यूरोप के देशों में अलग-अलग रहीं। अगर कुछ उदाहरणों से इसे स्पष्ट करें तो देख सकते हैं कि हालैंड में तेजी से परिवर्तन आया जो इंग्लैंड के मुकाबले ज़्यादा क्रांतिकारी था। इसी प्रकार यद्यपि 1789 में फ्रांसीसी राजतंत्र समाप्त हो गया लेकिन 19वीं शताब्दी के अंतिम 25 वर्षों से पहले तक वहाँ पूँजीवादी आर्थिक विकास और राजनीतिक व्यवस्था पटरी पर नहीं आ सकी। 1971 में जर्मन प्रदेशों के एकीकरण से पूर्व वहाँ पूँजीवाद के विकास में अनेक अड़चनें आयीं जिसके फलस्वरूप यहाँ पूँजीवादी रूपांतरण सामंती अवशेषों तथा राजनीतिक निरंकुशता के साथ मिल

गया। यह एक ऐसा अनुभव था जिसके बारे में मार्क्स ने 'पूँजी' के पहले खण्ड की भूमिका में प्रकाश डाला है।

1818 में प्रशिया के राइन प्रांत के एक मुख्य शहर त्रायर में जन्में कार्ल मार्क्स लगभग उस समय बड़े हुए जब यूरोप में पूँजी के संक्रमण का अंतिम चरण चल रहा था। इस अध्ययन के पिछले खंड में हमने ऐसे विभिन्न सामाजिक विचारों और परिप्रेक्ष्यों पर ध्यान दिया है जो सामंती व्यवस्था को लाँघते हुए पूँजीवादी संघर्ष के लिए जन समर्थन जुटाने का प्रयास कर रहे थे और बाद में ऐसे अनेक सिद्धांतों को आकार देने में लगे थे जिनसे सत्ता में आए पूँजीवाद के प्रहार से मजदूर वर्ग की रक्षा की जा सकती थी। किसी भी देश में पूँजी की समृद्धि और सत्ता की विजय के साथ-साथ वहाँ की मेहनतकश आबादी को अनिवार्य रूप से अपने खुद के उत्पादन साधनों को खोना पड़ता था और अपनी आजीविका के लिए पूँजीवादी उद्यम/मालिक के अधीन मजदूरी पाने वाले श्रमिक के रूप में जिंदगी की शुरुआत करनी पड़ती थी।

'पेरिस मैनुस्क्रिप्ट्स' में पूँजी और श्रम की प्रकृति और स्थितियों पर विस्तार से लिखते हुए मार्क्स ने श्रम के अलगाव के तीन पहलुओं की तरफ संकेत किया था :

1) अपने काम के भौतिक उत्पाद से अलगाव।

2) खुद श्रमिक की गतिविधियों से अलगाव।

3) अपने साथ के लोगों से अलगाव।

पेरिस मैनुस्क्रिप्ट्स के लिखे जाने की तिथि को ध्यान में रखें तो ऐसा लगता है कि मार्क्स ने महज उत्पादन के क्षेत्र में ही पूँजी-श्रम उत्पादन संबंध (*पेरिस मैनुस्क्रिप्ट्स* में उत्पादन संबंध शब्दावली का इस्तेमाल नहीं किया) पर विचार नहीं किया था। उन्होंने पूँजीवादी सामाजिक संबंध के समग्र ढाँचे को इसके अंतर्गत लिया था। (अर्थात् मनुष्य का एक दूसरे से अलगाव में पड़ जाना)। इस प्रकार पूँजीवाद एक ऐसे तरह के अलगाव को अपने साथ ला रहा था जिसने एक प्राणी के रूप में मनुष्य की प्रकृति में ही तब्दिली ला दी। मार्क्स के लिए ये सारी बातें पूँजीवादी बुराइयों तक ही सीमित नहीं थी। वह एक ऐसी सैद्धांतिक समझदारी विकसित करने की कोशिश में लगे थे जिससे अपने खुद के अंतर्विरोधों में पूँजीवाद की वास्तविकता स्पष्ट हो सके। जो एक ऐतिहासिक चरण से गुजर रहा था। समाजवाद में किसी भी तरह के संक्रमण के लिए इस तरह के अंतर्विरोधों को उचित ढंग से हल करना ही होगा।

समाजवाद की दिशा में ऐतिहासिक प्रगति इस बात पर निर्भर करेगी कि उन अंतर्विरोधों की प्रकृति की कैसे व्याख्या की जाए और पूँजीवाद को नकारने के लिए उसका कैसे इस्तेमाल किया जाए। जब इस दिशा में सोचते हैं तब किसी ऐसे सिद्धांत की ज़रूरत पड़ती है जो इतिहास के अनुभवों का लेखा-जोखा रख सके – उस इतिहास के जो देश, काल और परिवर्तनों के सार को प्रभावित करने वाले व्यक्तियों और कारकों के सापेक्षित महत्त्व को ध्यान में रखते हुए विभिन्न अवस्थाओं से गुजर रहा हो। हमारा यह ज्ञान कि किस प्रकार अतीत के गर्भ से वर्तमान का जन्म हुआ है हमें उन ज़रूरतों को समझने में मदद पहुँचाता है कि ऐतिहासिक प्रक्रिया के दौरान भविष्य में किस दौर से गुजरना होगा। इस तरह के ज्ञान की सत्यता की परख समाज में रहने वाले व्यक्तियों, उनकी वर्ग अवस्थितियों और उनके क्रियाकलापों के संदर्भ में की जा सकती है। इसके अलावा इस तरह के ज्ञान को व्यवहारिक सामाजिक अनुभव से ज़्यादा से ज़्यादा साधन प्राप्त हो सकते हैं। इतिहास कोई स्वतंत्र आधिभौतिक वस्तु नहीं है। यह मानव समुदाय की उद्देश्यपूर्ण गतिविधि है। मनुष्य अपने वास्तविक सामाजिक जीवन में अपने इर्द-गिर्द की परिस्थितियों की रचनात्मक समझ के आधार पर इतिहास का निर्माण करते हैं।

हमने अभी इतिहास के बारे में मार्क्स के विचार को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा इससे हमें यह पता चलता है कि वेतलिंग के साथ बहस में मार्क्स क्यों वैज्ञानिक ज्ञान की प्रासंगिकता पर इतना जोर देते थे। वे ऐतिहासिक यथार्थ की खोज के लिए सामान्य प्रकृति, सार्वभौमिकता, आवश्यकता और वस्तुगत सत्य को काफी महत्त्व देते थे क्योंकि इन्हें वे वैज्ञानिक समझ के गुण मानते थे। मार्क्सवादी सिद्धांत के ब्यौरों पर विस्तार से बातचीत करने से पूर्व हम यूरोप की बौद्धिक परंपरा (मसलन जर्मनी का शास्त्रीय दर्शन, खास तौर से हेगेल की प्रणाली, प्रबोधन काल के दार्शनिकों का भौतिकवाद, ब्रिटेन की शास्त्रीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था तथा अति आदर्शवादी समाजवाद के विभिन्न संस्करण जिन पर इस अध्ययन के पिछले खंड में हमने चर्चा की थी) द्वारा पड़े जबर्दस्त प्रभावों पर ध्यान दे सकते हैं जिन्होंने मार्क्स के विचारों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। निश्चय ही मार्क्स के सिद्धांत के अनेक अवयवों को उनके पूर्वजों/समकालीनों द्वारा प्रस्तुत विचारों के स्वीकार/इंकार की रोशनी में समझा जा सकता हैं जिनमें उन्होंने यूरोप के पूँजीवाद में संक्रमण तथा आगे चलकर समाजवाद की दिशा ग्रहण करने के बारे में चर्चा की थी।

बोन और बर्लिन के विश्वविद्यालयों में और खास तौर से बर्लिन विश्वविद्यालय में एक छात्र के रूप में अध्ययन करते हुए मार्क्स पर हेगेलवादी दर्शन का बहुत प्रभाव पड़ा। वे 'यंग हेगेलियंस' में शामिल हो गए। हेगेलवादी दर्शन की इनकी व्याख्या और ईसाई विचार की आलोचना ने एक तरह के बुर्जुआ जनतांत्रिक विचार तथा राजनीतिक हित का विकास किया। 1844 में फ्रेडरिक ऐंगल्स (1820-95) की मुलाकात मार्क्स से हुई और वे जीवन भर मित्र एवं एक दूसरे के सहयोगी बने रहे। दोनों 'यंग हेगेलियंस' के आदर्शवादी दार्शनिक दृष्टिकोण के आलोचक थे और इस बात पर जोर देते थे कि समाज के आध्यात्मिक जीवन की जड़ों के भौतिक सामाजिक संबंधों की खोजबीन करने की ज़रूरत है। इससे पहले 'यंग हेगेलियंस' के दृष्टिकोण की आदर्शवादी कमजोरी की ओर लुडविग फायरबाख (1807-72) ने इशारा किया था। अपनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'दि ऐशेंस ऑफ क्रिस्चियनिटी' (पहला जर्मन संस्करण 1846 में, अंग्रेजी अनुवाद 1854 में) में उन्होंने इस बात का सूत्रीकरण किया है कि किस प्रकार मनुष्य ने अपनी ज़रूरतों के लिए ईश्वर का निर्माण किया। यह आदर्शवादी विचारों के ऊपर भौतिकवादी विचारों की विजय की दिशा में एक उल्लेखनीय कदम था।

मार्क्स और ऐंगल्स द्वारा संयुक्त रूप से लिखी गयी पुस्तक *दि होली फेमिली* अर्थात् और *दि क्रिटिक ऑफ क्रिटिकल क्रिटिक* (1845) ने दार्शनिक आदर्शवाद पर जबर्दस्त प्रहार किया। यंग हेगेलियंस को 'होली फेमिली' कहा गया। इस पुस्तक में प्रबोधन काल के दार्शनिकों के दृष्टिकोण की इसलिए सराहना की गयी क्योंकि वे सत्य के अनुभवात्मक जाँच पर जोर देते थे। साथ ही बदल रहे सामाजिक संबंधों के विचारों को ठीक से समझने के लिए और साथ ही यह जानने के लिए कि किस प्रकार सर्वहारा ही पूँजीवाद की कब्र खोदेगा, द्वंद्वात्मक पद्धति को सख्ती से लागू किया गया। पूँजीवादी निजी संपत्ति सर्वहारा के अंदर अनिवार्य रूप से अपनी खुद की दुश्मन पैदा करती है। और जैसे-जैसे निजी संपत्ति का विकास होता है, सर्वहारा इसके निषेध के रूप में विकसित होता है और एक अमानवीकृत शक्ति उस संश्लेषण की पूर्व शर्त बन जाती है जो एक दूसरे के विरोध में खड़े पूँजी और श्रम का निपटारा कर देते हैं।

मार्क्स और ऐंगल्स ने जिस अगली पुस्तक पर संयुक्त रूप से काम किया वह पुस्तक थी *दि जर्मन ऑडियोलॉजी*। यद्यपि यह पुस्तक 1845 में लिखी जा चुकी थी लेकिन उनके जीवन काल में इसका प्रकाशन नहीं हुआ। पहली बार 1932 में यह सोवियत संघ में प्रकाशित हुई। अपने पुस्तक *ए कांट्रीब्यूशन टू दि क्रिटिक ऑफ पोलिटिकल इकॉनामी* (1859) में मार्क्स ने अपनी अप्रकाशित पुस्तक *दि जर्मन आडियोलॉजी* का उल्लेख किया है। आदर्शवाद की अपनी आलोचना प्रस्तुत करने के अलावा मार्क्स और ऐंगल्स ने फायरबाख के भौतिकवाद की खामियों को उदघाटित किया जो यह समझने में असफल रहा था कि किसी खास सामाजिक आर्थिक ढाँचे

में रहने वाले लोगों के जीवन की विसंगतियाँ क्या होती हैं। *दि जर्मन आडियोलॉजी* में पहली बार मार्क्स ने वर्ग संघर्ष और सामाजिक चेतना के संदर्भ में ऐतिहासिक अवस्थाओं के अपने विचारों के बारे में लिखा जिससे इतिहास की गति को हम समझ सकें।

मार्क्स की टिप्पणी 'थीसिस ऑन फायरबाख' (1845 में लिखित) उनकी नोटबुक में मिली थी और पहली बार इसका प्रकाशन ऐंगल्स की पुस्तक *लुडविग फायरबाख ऐण्ड दि आउटकम ऑफ क्लासिकल जर्मन फिलासाफी* (1888) की परिशिष्ट के रूप में हुआ। बाद में जब *दि जर्मन आइडियालॉजी* पुस्तक के रूप में जारी हुई तो इसमें भी यह टिप्पणी परिशिष्ट के रूप में थी। कुल मिलाकर हमारे पास ऐसी 11 थीसिस हैं जिनमें मानव समुदाय और उसके आसपास की परिस्थितियों के बीच जिस तरह की द्वंद्वात्मक अंत:क्रिया होती है उसे उचित ढंग से न समझ पाने के लिए आदर्शवाद की सीमाओं और भौतिकवाद के प्रारंभिक संस्करणों पर क्रमश: टिप्पणी की गयी है। आदर्शवाद की स्थिति मानव समाज के यथार्थ को उचित संज्ञान में लाए बिना अमूर्तता में फँस गयी। दूसरी तरफ पहले का भौतिकवाद मनुष्य समुदाय को मात्र उसकी परिस्थितियों का जीव ही मान सका और यह नहीं समझ सका कि परिस्थितियों के निर्माण में मनुष्य की ऐंद्रिय गतिविधियों की क्या भूमिका है। मार्क्स की अवस्थिति स्मरणीय ढंग से उनकी ग्यारहवीं थीसिस में व्यक्त हुई जो इस कड़ी का अंतिम सूत्र थी—'दार्शनिकों ने अलग-अलग तरीकों से दुनिया की महज व्याख्या की है लेकिन सवाल यह है कि इसे बदला कैसे जाय।'

हमने पहले ही उस कम्युनिस्ट करेस्पांडेंस कमेटी का जिक्र किया है जिसकी स्थापना मार्क्स और ऐंगल्स ने 1845-46 में की थी। इन समितियों ने लंदन और पेरिस जैसी जगहों में काम शुरू कर दिया था। 1847 की गर्मियों में लंदन में हुई इन समितियों की बैठक में फैसला किया गया कि इन्हें मिलाकर एक संस्था का रूप दिया जाय। लंदन में नवंबर-दिसंबर में आयोजित बैठक में इस संस्था को 'कम्युनिस्ट लीग' नाम दिया गया और कार्ल मार्क्स को जिम्मेदारी सौंपी गयी कि वह कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र तैयार करें जिसे लीग द्वारा प्रकाशित किया जायेगा।

कम्युनिस्ट घोषणापत्र (1848) के मुखपृष्ठ पर लेखक के रूप में मार्क्स और एंगेल्स का नाम प्रकाशित है और ऐसा लगता है कि दोनों ने मिलकर इसे लिखा है। बात में एंगेल्स ने बताया कि मौलिक रूप से वे मार्क्स के विचार हैं और वास्तविक लेखन मार्क्स द्वारा किया गया। इसके चार भाग हैं। पहला भाग (पूँजीपति और सर्वहारा) वर्ग समाजों और वर्ग संघर्ष की निरंतरता के रूप में समाज का इतिहास प्रस्तुत करता है। समाज विकास के नियमों की अभिव्यक्ति उत्पादन के एक साधन का उत्पादन के दूसरे साधन द्वारा स्थान लिये जाने में होती है। दूसरा भाग (सर्वहारा और कम्युनिस्ट) पूँजीपति वर्ग और कम्युनिस्टों के नेतृत्व में चले संघर्ष में पूँजीवाद के प्रतिस्थापन से संबंधित है। मजदूर वर्ग के अन्य समूहों से कम्युनिस्टों का मतभेद होता है पर वे इन समूहों के विरोधी नहीं होते। कम्युनिस्टों को उनके अंतर्राष्ट्रीयवाद के लिए जाना जाता है और सर्वहारा आंदोलन में अपने भूमिका को लेकर वे पूर्ण सचेत होते हैं। साम्यवाद के प्रति पूँजीपति वर्ग की आपत्तियों को खारिज करते हुए इस भाग में उन उपायों की रूपरेखा दी गयी है जो सत्ता में आने के बाद विजयी सर्वहारा द्वारा अपनायी जायेगी और सर्वहारा के अधिनायकत्व की आवश्यकता और प्रासंगिकता को बताया गया है। तीसरे भाग (समाजवादी और साम्यवादी साहित्य) में समाजवाद के सिद्धांतों की विशद आलोचना है। प्रतिक्रियावादी, बुर्जुवा किस्म के लोग सामंती कुलागत [illegible] के उदाहरण मात्र है और समाजवाद का ढोंग करते हुए वे पूँजीपति वर्ग और निम्न पूँजीपति वर्ग के दांवपेंच करते हैं। कुछ यूटोपियन समाजवादी अपने नैतिक मनोभावों और पूँजीवाद को अस्वीकार करने के प्रति ईमानदार को सकते हैं। लेकिन पूँजीवादी शोषण के यथार्थ से मुक्ति पाने की अपनी तलाश में वे गुमराह होते हैं। चौथा भाग (विभिन्न विपक्षी दलों के प्रति कम्युनिस्टों का रुख) यह बताता है कि विभिन्न विपक्षी दलों के साथ व्यवहार में कम्युनिस्टों की क्या कार्यनीति हो। निश्चय ही यह इस पर निर्भर करेगा कि किसी खास देश और समाज में विकास की अवस्था के बरक्स पार्टी की स्थिति क्या है। घोषणापत्र इस

नारे के साथ समाप्त होता है— 'दुनिया के मजदूरों एक हो।' इस नारे में जो भाव है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मार्क्स के विचार 'फ्रैटर्नल डेमोक्रेट्स' तथा चार्टिस्ट्स और लंदन में निर्वासित जीवन बिता रहे राजनीतिक लोगों सहित पुराने अंतर्राष्ट्रीय समाज द्वारा इस्तेमाल किए गए नारे 'सभी मनुष्य भाई हैं' कितना अलग है।

मार्क्स ने *दि पावर्टी ऑफ फिलासफी* (1847) फ्रेंच भाषा में लिखी। यह पुस्तक फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, समाजशास्त्री और अर्थशास्त्री पीअरे जोसेफ प्रूधों (1809-65) को ध्यान में रखकर लिखी गयी थी जो समाज के इतिहास को विचारों का संघर्ष मानते थे और जिनकी धारणा थी कि एक आदर्श संगठन के जरिए पूँजीवादी सामान के उत्पादकों के बीच 'न्यायोचित विनिमय' संभव है। यह पुस्तक उत्पादन की पूँजीवादी प्रणाली को अच्छी तरह समझने के बारे में मार्क्स के अथक प्रयास की निश्चित झलक प्रस्तुत करती है। वह एक ऐसे सैद्धांतिक परिणाम की तलाश में थे जो शास्त्रीय राजनीतिक अर्थशास्त्र के संरचनात्मक स्वरूपों को उस समाज के साथ द्वंद्वात्मक रूप से जोड़ सके जो इतिहास की प्रक्रिया में अपने अंतर्विरोधों के दबाव से निरंतर बदल रहा था।

मार्क्स के जिम्मे कई कार्य थे जिनमें यूरोप के मजदूर वर्ग को संगठित करने के कम्युनिस्ट लीग के रोजमर्रा के काम भी शामिल थे फिर भी उन्होंने कभी राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना के अपने बड़े काम की उपेक्षा नहीं की। उन्हें पता था कि वैज्ञानिक समाजवाद की तर्कसंगतता के लिए यह बहुत जरूरी है। यही वह बिन्दु है जहाँ 1857-58 में मार्क्स द्वारा लिखित 7 टिप्पणियों का महत्त्व है जिन्हें अब हम 'ग्रुंडरिसे' (*आउटलाइंस ऑफ ए क्रिटिक ऑफ पोलीटिकल इकानॉमी*) के नाम से जानते हैं। इसका पहला अंग्रेजी संस्करण पेलीकन मार्क्स लाइब्रेरी, हार्मण्ड्सवर्थ, इंग्लैंड से 1973 में प्रकाशित हुआ। जिसका अनुवाद मार्टिन निकोलास ने किया था। इसमें उस महत्त्वपूर्ण बात को सामने लाया गया है कि पूँजीवाद से समाजवाद में ऐतिहासिक संक्रमण के सवाल को राजनैतिक अर्थशास्त्र के रिकॉर्डो के विचारों को हेगेल की भाषा में और ऐतिहासिक गति के हेगेल के विचारों को रिकार्डो की भाषा में सूत्रबद्ध कर ढूंढा जा सकता है। (मार्टिन निकोलास, 'दि अननोन मार्क्स'। (यह रॉबिन ब्लैकबर्न द्वारा संपादित 'आडियोलॉजी इन सोशल साइंस', 1972, पृष्ठ 331 में संकलित है।) पूँजीवादी आर्थिक विकास के अपने विश्लेषण में रिकार्डो ने इस प्रक्रिया में असंगत, प्रवृत्तियों की तलाश की। लेकिन उनके लिए पूँजीवाद एक अपरिवर्तनीय प्राकृतिक व्यवस्था थी जिसे किसी भी परिस्थिति में बदला नहीं जा सकता। दूसरी तरफ समाज के बारे में हेगेल के द्वंद्ववाद में एक गतिशील दृष्टिकोण दिखायी देता है लेकिन वह समाज के भौतिक जीवन में जो अंतर्विरोध हैं उसके मर्म को नहीं समझ सके। मार्क्स ने हेगेल के द्वंद्ववाद को राजनीतिक अर्थशास्त्र के अपने आलोचनात्मक अध्ययन के साथ जोड़ा और समाजवाद द्वारा पूँजीवाद के ऐतिहासिक प्रतिस्थापन की समझ विकसित की। मार्क्स के लिए आर्थिक और दार्शनिक विचारों का यह सम्मिलन 1844 में *पेरिस मैनुस्क्रिप्ट्स* के साथ ही शुरू हो गया था। *ग्रुंडरिसे* में यह उस मुकाम तक पहुँच गया जिसमें वह पूँजीवाद की राजनीतिक-आर्थिक व्याख्या को व्यक्त कर सकें और क्रांतिकारी रूपांतरण के सर्वहारा आचरण को समझ सकें।

ए कंट्रीब्यूशन टू दि क्रिटिक ऑफ पोलिटिकल इकानॉमी (1859) की भूमिका में मार्क्स ने ऐतिहासिक गतिशीलता और सामाजिक गति परिवर्तन की अपनी रचनात्मक सैद्धांतिक समझ के बारे में विस्तार से बताया है। यह बहुत लम्बा नहीं है लेकिन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है जैसा कि निम्नांकित उद्धरण से स्पष्ट होता है:

> 'अपने खोजबीन से मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि वैधानिक संबंधों को मसलन राज्य के स्वरूपों को न तो अपने-आप में और न मानव मस्तिष्क के तथाकथित आम विकास के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए। इसके विपरीत यह देखना

चाहिए कि जीवन की भौतिक स्थिति में उनकी जड़ें कहाँ हैं। इसे हेगेल ने 18वीं शताब्दी के अंग्रेजों और फ्रांसीसियों का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए 'सिविल सोसायटी' शब्दावली के अंतर्गत जोड़ा था। लेकिन सिविल सोसायटी की संरचना की तलाश राजनीतिक अर्थव्यवस्था में की जानी चाहिए... जिस सामान्य नतीजे पर मैं पहुँचा हूँ और जिसने मेरे अध्ययन के लिए निर्देशक सूत्र का काम किया उसे संक्षेप में इस प्रकार सूत्रबद्ध किया जा सकता है। अपने जीवन के सामाजिक उत्पादन में मनुष्य के कुछ ऐसे निश्चित संबंध स्थापित होते हैं जो अपरिहार्य हैं और उसकी इच्छा से स्वतंत्र हैं। उत्पादन के ये संबंध उत्पादन की उनकी भौतिक शक्तियों के अनुरूप विकास के निश्चित अवस्था में पहुँचते हैं। उत्पादन के इन संबंधों के कुल योग से समाज का आर्थिक ढाँचा तैयार होता है। यही वास्तविक बुनियाद है जिनपर कोई वैधानिक और राजनीतिक अधिरचना खड़ी की जाती है और जिसके अनुरूप सामाजिक चेतना के निश्चित स्वरूप बनते बिगड़ते हैं। भौतिक जीवन की उत्पादन पद्धति सामान्य तौर पर सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन प्रक्रिया का निर्धारण करती है। मनुष्य की चेतना उसका होना नहीं तय करती बल्कि इसके विपरीत उसकी सामाजिक स्थिति उसकी चेतना का निर्माण करती है। अपने विकास की एक निश्चित अवस्था में समाज की भौतिक उत्पादक शक्तियाँ विद्यमान उत्पादन संबंधों के साथ संघर्षरत होती हैं। अगर इसे वैधानिक अभिव्यक्ति देते हुए कहें तो इनका संघर्ष उन संपत्ति संबंधों से होता है जिनके साथ वह पहले कार्यरत थीं। उत्पादक शक्तियों के विकास के स्वरूपों से ये संबंध अपने लिए बेड़ियाँ तैयार करते हैं। इसके बाद सामाजिक क्रांति का युग शुरू होता है। आर्थिक बुनियाद में परिवर्तन के साथ समूची अधिरचना कमोबेश तेजी से रूपांतरित होती हैं। इस तरह के रूपांतरणों पर विचार करते समय उत्पादन की आर्थिक स्थितियों के भौतिक रूपांतरण (जिन्हें प्रकृति विज्ञान के सूक्ष्म अध्ययन से समझा जा सकता है) तथा वैधानिक, राजनीतिक, धार्मिक और दार्शनिक यानि वैचारिक स्वरूपों के बीच फर्क किया जाना चाहिए। जिसमें मनुष्य इस संघर्ष के प्रति सचेत होता है और इसके विरुद्ध संघर्ष करता है। जिस प्रकार किसी के बारे में हमारी राय इस पर आधारित नहीं होती कि वह अपने बारे में क्या सोचता है। इसी प्रकार हम रूपांतरण की इस अवधि को उसकी खुद की चेतना से नहीं तय कर सकते। इसके विपरीत इस चेतना की व्याख्या भौतिक जीवन के अंतर्विरोधों से, तथा सामाजिक उत्पादक शक्तियों और उत्पादन संबंधों के बीच विद्यमान संघर्षों से की जानी चाहिए। कोई भी सामाजिक व्यवस्था उत्पादक शक्तियों से पूर्व गायब नहीं होती। और उत्पादन संबंधों के नए उच्चतर रूप कभी भी अपने अस्तित्व की भौतिक स्थितियों से पूर्व जो पुराने समाज के गर्भ में पल रही थी कभी भी प्रकट नहीं होती। इसलिए मनुष्य खुद को हमेशा ऐसे कामों में लगा है जिसे वह हल कर सके। अगर बहुत बारीकी से हम देखेंगे तो हम हमेशा इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि कोई भी काम तभी सामने आता है जब उसके समाधान के लिए आवश्यक भौतिक स्थितियाँ या तो मौजूद हों या कम से कम निर्माण की प्रक्रिया में हों। व्यापक दायरे में हम देखें तो पाएँगे की एशियाटिक, प्राचीन, सामंती और आधुनिक बुर्जुआ उत्पादन के तरीके समाज के आर्थिक निर्माण की प्रक्रिया में अपने समय के प्रगतिशील युग थे। उत्पादन के पूँजीवादी संबंध उत्पादन के सामाजिक प्रक्रिया का अंतिम शत्रुतापूर्ण रूप है। शत्रुतापूर्ण से मेरा अभिप्राय किसी व्यक्तिगत शत्रुता से नहीं है बल्कि बुर्जुआ समाज के गर्भ में पल रही उत्पादक शक्तियों से है। इन्हीं से इस शत्रुता के समाधान की भौतिक स्थितियाँ भी निर्मित होती हैं।'

ऐतिहासिक भौतिकवाद के इस बिन्दु तक पहुँचने के बाद मार्क्स की चिंता पूँजीवादी सामाजिक संरचना के अंतर्विरोधों को व्याख्यायित करने की थी। इसमें कोई शक नहीं कि सामाजिक परिवर्तन के नए सिद्धांत की सत्यता इतिहास के रूप में वर्तमान के साक्ष्यों के साथ घनिष्ट रूप से जुड़ी हुई है। उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति का अर्थशास्त्र मार्क्स के 'कैपिटल' का विषय है जिसे मार्क्स अपने जीवन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण काम मानते हैं। इसका पहला खंड 1867 में प्रकाशित हुआ। दूसरा और तीसरा खंड ऐंगल्स की संपादकीय देख रेख में मार्क्स मृत्यु के पश्चात क्रमश: 1885 और 1894 में प्रकाशित हुआ। पहले खंड में पूँजी-श्रम संबंध का तार्किक विस्तार मिलता है। यह अमूर्तता के स्तर और विश्लेषण के रूपों में है जो पूँजीवादी व्यवस्था की गतिशील प्रवृत्तियों तथा महत्त्वपूर्ण संरचनात्मक विशिष्टताओं को सर्वोत्तम ढंग से ठोस रूप देती है। दूसरे और तीसरे खंडों में पूँजीवाद के यथार्थों को अपेक्षाकृत कम अमूर्तन और ठोस वस्तुओं और घटनाओं के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। उनके क्षेत्र हैं – पूँजी का प्रचलन (खंड-2) और फिर समग्र रूप से पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया (खंड-3)। 'थ्योरीज ऑफ सर्प्लस वैल्यू' (1862-63) को प्राय: पूँजी का चौथा खंड कहा जाता है और इसमें राजनीतिक अर्थव्यवस्था से संबंधित पहले के और समकालीन लेखन की रोशनी में मार्क्स के सिद्धांत का सैद्धांतिक तौर पर ऐतिहासिक प्रमाणीकरण किया गया है।

मार्क्स ने प्रतिस्पर्द्धात्मक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मुनाफे के स्रोत की ओर इशारा किया है। किसी भी सामान का मूल्य इस बात से निर्धारित होता है कि उसे पैदा करने के लिए सामाजिक तौर पर आवश्यक श्रम का कितना समय जरूरी है। श्रम शक्ति वेतन के एवज में दिया गया एक सामान है। श्रम शक्ति का मूल्य (अर्थात मजदूरी) उस मूल्य के बराबर है जिसकी ज़रूरत किसी मजदूर को अपने परिवार के साथ गुजारे लायक जिंदगी बसर करने के लिए जरूरी होता है। एक सामान के रूप में श्रम शक्ति की विचित्रता यह है कि इसके मूल्य के रूप में इसे जो मजदूरी दी जा रही है उससे भी ज़्यादा मूल्य यह पैदा कर सकता है। श्रम शक्ति द्वारा पैदा किया गया मूल्य और उसको दिये गये मजदूरी में जो अंतर है उसी को अतिरिक्त मूल्य (सर्प्लस वैल्यू) कहते हैं। यह अतिरिक्त मूल्य पूँजीपति मालिक के पास इकट्ठा होता जाता है और यही मुनाफे का स्रोत है। इस तरह के मुनाफे को ज़्यादा से ज़्यादा इकट्ठा करना पूँजीवादी उत्पादन का मुख्य लक्ष्य है। अधिक से अधिक इकट्ठा करने के फलस्वरूप उत्पादन शक्तियाँ आगे बढ़ती हैं और उत्पादन में वृद्धि होती है। इसी से पूँजी का केंद्रीकरण भी होता है। मार्क्स के शब्दों में 'एक पूँजीपति हमेशा कई पूँजीपतियों के हत्या करता है।' प्रतिस्पर्द्धा के कारण कई पूँजीपति मैदान छोड़कर भाग खड़े होते हैं। इन सबका संबंध दुख दर्द, उत्पीड़न, गुलामी और मनुष्य के नीचा दिखाये जाने में निरंतर वृद्धि से है। इससे मजदूर वर्ग के विद्रोह की स्थितियाँ परिपक्व होती हैं। उत्पादक शक्तियों का विकास अधिक समय तक सर्वहारा की कीमत पर अधिक से अधिक मुनाफा कमाने की पूँजी की भूख से ताल मेल नहीं बैठा सकती। मुनाफे की गिरती दर और साथ ही ज़रूरत से ज़्यादा उत्पादन (अर्थात जो पैदा किया जा रहा है उसके लिए बाजार की अपर्याप्त मांग) की प्रवृत्तियाँ पूँजीवादी संकट के लक्षण के रूप में प्रकट होती हैं। मुनाफे की दर और अति उत्पादन से संबंधित मुद्दों का थोड़े विस्तार के साथ 'पूँजी' के तीसरे खंड में विश्लेषण किया गया है।

13.4 मार्क्स और समकालीन इतिहास

मार्क्स महज एक सैद्धांतिक दार्शनिक नहीं थे। उन्होंने 1847 में कम्युनिस्ट लीग की स्थापना में भूमिका निभाई और बाद में *कम्युनिस्ट घोषणापत्र* (1848) लिखा। इसके अलावा वह 1864 में स्थापित इंटरनेशनल वर्किंग मेन्स एसोसिएशन (पहला इंटरनेशनल) के सबसे सक्रिय और प्रभावशाली सदस्य थे। 1850 के दशक के आसपास यूरोप के देश पूँजीवादी व्यवस्थां के अलग अलग चरणों में पहुँचे थे जिसका मार्क्स ने अपने कम्युनिस्ट घोषणा पत्र में संकेत दिया है। इस

तरह की ऐतिहासिक स्थितियों के अपने अनेक मूल्यांकनों में मार्क्स ने किसी देश के पूँजीपति वर्ग की सापेक्षिक ताकत और कमजोरी पर बल दिया। ऐसी भी परिस्थितियाँ आईं जिनमें उन्होंने मजदूर वर्ग से अनुरोध किया कि वह एक बुर्जुआ जनतांत्रिक क्रांति के संपन्न होने में मदद करें क्योंकि इससे वह समाज सामाजिक संक्रमण के और नजदीक पहुँचेगा।

मार्क्स की उन ऐतिहासिक स्थितियों से भी मुठभेड़ हुई जहाँ पूँजीपति वर्ग तो पूरी तरह पराजित हो गया था लेकिन मजदूर वर्ग अभी तक इस बात के लिए तैयार नहीं था कि वह राजनीतिक कमान पर कब्जा कर ले। ऐसी परिस्थितियों में वर्गों की जटिल बहुलता को मार्क्स ने अपने लेख 'लुई बोनापार्ट की 18वीं ब्रूमेर' में तीक्ष्ण विश्लेषण किया है। इसका 2सरोकार फ्रांसीसी इतिहास की उस घटना से है जब नेपोलियन प्रथम के भांजे लुई बोनापार्ट ने 1851 में एक सैनिक विद्रोह के बाद नेपोलियन तृतीय के रूप में सम्राट का खिताब हासिल किया था।

1871 में पेरिस कम्यून का मार्क्स का विश्लेषण अनेक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके निर्वाचित सदस्यों में भारी संख्या में शारीरिक श्रम करने वाले मजदूर चुने गये थे। इनमें से अधिकांश इंटरनेशनल के भी सदस्य थे। यह कोई ऐसी क्रांति नहीं थी जो समाज में विद्यमान उत्पादन संबंधों को हटाकर उत्पादक शक्तियों के विकास से ऐतिहासिक परिवर्तन के मार्क्सवादी सिद्धांत पर खरी उतरती हो। तो भी मार्क्स ने इसके महत्त्व को रेखांकित किया और इसकी जनतांत्रिक तथा राजनीतिक सत्ता के विकेंद्रित कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

गैर यूरोपीय देशों (मसलन उत्तरी अमेरिका, चीन, भारत) के बारे में मार्क्स की टिप्पणियाँ अधिकांशतः यूरोप के ऐतिहासिक अनुभव पर उनके द्वारा व्यक्त विचारों से प्रभावित थीं। इसके अनुसार सामंतवाद से पूँजीवाद में और फिर, जैसा कि मार्क्स ने महसूस किया, एक सर्वहारा क्रांति द्वारा हासिल समाजवाद में रूपांतरण हो रहा था। उत्पादन की एशियाई प्रणाली के बारे में उनके विचार आमतौर पर ब्रिटिश साम्राज्य के विचारकों से प्राप्त किये गये थे। वे प्रायः भारत को एक गतिहीन बर्बर समाज के रूप में चित्रित करते थे जो साम्राज्यवादी ब्रिटेन के 'सभ्य बनाने वाले' शासन के अधीन रहकर ही इन चीजों से मुक्ति पा सकता था। इन सभी चीजों के घिनौने दुष्परिणामों के बावजूद हालात उस गुलाम देश के समाजवाद में रूपांतरण की संभावना खोल सकते थे। इसकी संभाव्यता के लिए जरूरी था कि शासन करने वाले देश में समाजवादी रूपांतरण हो। चीन के बारे में भी मार्क्स ने जबरन पश्चिमी सभ्यता थोपे जाने की ज़रूरत पर जोर दिया। अपने जीवन के अंतिम दशक में ऐसा लगता है कि शायद गैर यूरोपीय देशों से संबंधित मुद्दों और इतिहास में सामाजिक परिवर्तन के उनके रास्तों को ध्यान में रखते हुए मार्क्स कुछ नयी खोजबीन कर रहे थे। इस पाठ में आगे चलकर हम इस मुद्दे पर चर्चा करेंगे।

जहाँ तक अमेरिका का सवाल है मार्क्स ने 1861-65 के गृहयुद्ध की व्याख्या दो सामाजिक प्रणालियों — गुलामी बनाम स्वतंत्र श्रम के बीच के संघर्ष के रूप में की है। उनका सारा समर्थन उत्तर के लिए था और दक्षिण के छोटे खेतिहरों के प्रतिरोध में जो लोकप्रिय तत्त्व था उससे उन्होंने कोई सरोकार नहीं रखा। इसमें कोई संदेह नहीं कि दक्षिण के दास स्वामियों के प्रति ब्रिटिश सत्ताधारी वर्ग का अनुकूल रवैया और अपने मजदूरों पर उन्ही वैचारिक प्रभावों को डालने के उनके प्रयासों ने इस मामले में मार्क्स की स्थिति को प्रभावित किया था।

13.5 शास्त्रीय मार्क्सवाद और इसकी परंपरा

अब तक मार्क्स के विचारों के सार तत्त्व के बारे में हमने कोई धारणा बना ली होगी। यह माना जा सकता है कि अभी प्रस्तुति उन विचारों का एक सारांश है जिनमें मार्क्सवाद के सिद्धांत और व्यवहार की कुछ जटिलताओं से बचा गया है जो लगभग दो शताब्दियों से भी अधिक समय से ऐतिहासिक अनुभव का एक अंग रही हैं। मौजूदा उद्देश्य के लिहाज से शास्त्रीय मार्क्सवाद के

अंतर्गत वे विचार हैं जो प्रत्यक्ष तौर पर मार्क्स और ऐंगल्स के लेखन से प्राप्त हुए हैं। इस अध्ययन के लिए मार्क्स और ऐंगल्स के बीच अगर कोई विचलन है तो उसे अलग रखा गया है। यह सभी जानते हैं कि एक लंबे समय तक मार्क्स और ऐंगल्स ने घनिष्ठ रूप से जुड़कर काम किया और प्राय: 'कम्युनिस्ट घोषणा पत्र' जैसे महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का संयुक्त तौर पर लेखन भी किया। आइये अब एक एक कर शास्त्रीय मार्क्सवाद के सार पर विचार करें।

मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन की गतिशीलता और इतिहास में रूपांतरण को समझने के लिए हेगेलवादी द्वंद्ववाद के तर्क को अपनाया। उन्होंने हेगेल के आदर्शवाद के दर्शन का साथ नहीं दिया। मार्क्स का मानना था कि व्यक्ति और विचार के संबंधों में व्यक्ति कर्ता है और विचार विधेय है। हेगेल ने इस संबंध को उलट दिया था और विचार को कर्ता तथा व्यक्ति को विधेय बना दिया था। लेकिन मार्क्स ने जो भौतिकवादी दार्शनिक स्थिति अपनायी वह प्रबोधन काल के यांत्रिक भौतिकवाद तथा इससे पूर्व के अन्य विचारों की तुलना में बहुत महत्त्वपूर्ण अर्थों में भिन्न थी। इसने मन और चेतना की यथार्थ पर ध्यान केंद्रित किया और मनुष्य के क्रियाकलाप को भौतिक परिस्थितियों का निष्क्रिय उत्पाद नहीं माना।

आर्थिक संरचना और क्रियाकलाप को इसकी स्थितियों, उत्पादक शक्तियों और उत्पादन संबंधों के अर्थ में समझा जाना चाहिए। उत्पादन की स्थितियाँ किसी समाज की भौगोलिक स्थिति, उसकी जलवायु और आबादी के आकार तथा संरचना जैसे जनगणना संबंधी विशिष्टताओं से निर्धारित होती हैं। उत्पादक शक्तियों के अंतर्गत औजार, मशीनें, टेक्नॉलाजी और कौशल आते हैं। उत्पादन संबंधों से अभिप्राय किसी समाज विशेष में संपत्ति की प्रकृति से है और श्रम के सामाजिक अस्तित्व के इसके स्वरूपों से है जो अपनी अंत:क्रिया में इस कार्य को अंजाम देते हैं कि क्या पैदा करना है, किस तरह पैदा करना है और किसके लिए पैदा करना है। इस प्रकार वे उत्पादन के रूप और उसकी मात्रा, इस्तेमाल करने वाली टेक्नॉलाजी तथा अंतिम उत्पाद की वितरण के बारे में फैसला लेते हैं।

इन सबको मिलाकर समाज की आर्थिक संरचना अर्थात उत्पादन का स्वरूप तय होता है। मार्क्स का मानना था कि समाज की आर्थिक संरचना में वैधानिक, धार्मिक, सौंदर्यपरक, दार्शनिक तथा अन्य वैचारिक तत्त्व काफी गहराई तक हैं। यही स्थिति राज्य तथा समाज के राजनीतिक स्थिति के लिए भी सच है। सभी सामाजिक अवस्थाओं (आदिम साम्यवाद की अवस्था को छोड़कर) के लिए वर्ग संघर्ष एक समान विशिष्टता है जिसका संकेत मार्क्स ने यूरोप के इतिहास के संदर्भ में किया था। ये अवस्थाएँ हैं प्राचीन दासता (ग्रीस और रोम), सामंती व्यवस्था और पूँजीवाद। उत्पादन के साधनों पर जिनका अधिकार है और जिनका अधिकार नहीं है, उनके बीच जो सामाजिक विभेद है इसके फलस्वरूप वर्ग युद्ध या वर्ग संघर्ष पैदा होता है। उत्पादन पद्धति के अंदर ही इन अंतर्विरोधों की कुंजी है और इसीलिए एक पद्धति से दूसरी पद्धति में परिवर्तन के लिए जोर दिया जाता है।

उत्पादन के किसी तरीके को तब तक बरकरार रखा जा सकता है जब तक इसके उत्पादन संबंध इन्हीं के अनुकूल उत्पादक शक्तियों के विकास से मेल खाते हैं। समय बीतने के साथ उत्पादन का तरीका एक ऐसी अवस्था पर पहुंच सकता है जब विद्यमान उत्पादन संबंधों के अंतर्गत उत्पादक शक्तियों का अब और विकास संभव न हो। इस प्रकार उत्पादन संबंधों की किसी खास पद्धति से जुड़ी संपत्ति प्रणाली और राजसत्ता से मिली उसे वैधानिक स्वीकृति उत्पादक शक्तियों के विकास में बाधक बन जाती है। मार्क्स के शब्दों में यहीं से सामाजिक क्रांति के एक युग की शुरुआत होती है जिसमें एक नया वर्ग, जो इससे भी नयी उत्पादन शक्ति के नायक के रूप में काम कर सके अपने सामाजिक प्रभुत्व और राजनैतिक सत्ता को हासिल करने के लिए सामने आता है। किसी अति आदर्शवादी छलांग या नकली अनुसरणवाद का विरोध करते हुए मार्क्स ने किसी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था के रूपांतरण के लिए भौतिक स्थितियों की पर्याप्तता पर

निर्णायक तौर पर जोर दिया:

> 'कोई भी व्यवस्था तब तक समाप्त नहीं होती है जब तक सभी उत्पादक शक्तियाँ, जिनकी थोड़ी भी गुंजाइश हो, विकसित न हो जाएँ और नये उच्चतर उत्पादन संबंध कभी भी प्रगट नहीं होते हैं जब तक उस पुराने समाज के गर्भ में पल रही भौतिक स्थितियाँ परिपक्व नहीं हो जाती हैं।'

मार्क्स के विचार से सर्वहारा की क्रांतिकारी विजय एक ऐसे वर्ग विहीन समाज की शुरुआत है जो मनुष्य और मनुष्य के बीच अलगाव से मुक्त हो। चूंकि एक संपत्तिविहीन वर्ग (अर्थात् सर्वहारा) पूँजीवाद की समाप्ति का कार्य सम्पन्न करता है इसलिए अब समाज किसी भी तरह की निजी संपत्ति को प्रश्रय नहीं देता। अलगाव का मूल कारण समाप्त हो जाता है। सर्वहारा क्रांति की सफलता सभी पुरुषों / महिलाओं को अलगाव तथा वास्तविक आजादी के अभाव से मुक्त कर देती है।

जैसा कि पहले ही बताया गया है, इस अध्ययन के अंतर्गत शास्त्रीय मार्क्सवाद के रूप में मार्क्स और ऐंगल्स की कृतियों में उपलब्ध सिद्धांतों, विचारों और टिप्पणियों को लिया गया है। यह मार्क्सवाद शब्द के आम अर्थ से प्रस्थान है जिसमें उन विचारों और व्यवहारों को समाविष्ट किया जाता है जो मार्क्स के विचारों से प्राप्त माने जाते हैं। मार्क्स और ऐंगल्स की कृतियों में जिन विचारों को सीधे तौर पर पाया जा सकता था, उन पर उन दिनों 'मार्क्सवादी' का ठप्पा लगा दिया जाता था। यह भिन्नता स्वयं के जीवनकाल में ही प्रकट हो गयी थी। यहाँ जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी के एक प्रमुख नेता बर्नस्टीन के नाम 3 नवंबर 1882 को ऐंगल्स द्वारा लिखे पत्र का उल्लेख प्रासंगिक है जिसमें उन्होंने कहा था कि 'फ्रांस के स्वघोषित 'मार्क्सवादी' निश्चय ही कुछ इतने खास किस्म के हैं कि मार्क्स को लोफोर्ग से यहाँ तक कहना पड़ा कि "फिर तो एक बात तय है कि मैं मार्क्सवादी नही हूँ।"

हमारे पास पर्याप्त कारण हैं इस निर्णय तक पहुँचने के कि मार्क्स और ऐंगल्स द्वारा विकसित विचारों को ही शास्त्रीय मार्क्सवाद माना जाय। फिर हम बेहतर ढंग से यह समझ पाएँगे कि उस परंपरा के परवर्ती प्रभाव क्या हैं जिन्हें पूँजीवाद की समाप्ति के लिए ऐतिहासिक भौतिकवाद और सर्वहारा वर्ग संघर्ष के मिश्रण के साथ शास्त्रीय मार्क्सवाद ने घोषित किया था। शास्त्रीय मार्क्सवाद की पद्वतियों की प्रकृति ऐसी है कि यह पूरी तौर पर अपनी समग्र मूल प्रस्थापनाओं के प्रति पूर्ण अधीनता को स्वीकृति नहीं दे सकती। हमें इस कटु तथ्य का सामना करने को तैयार रहना होगा कि वर्ग संघर्ष, पूँजीवादी अंतर्विरोध और समाजवाद की दिशा में सशक्त ढंग से बढ़ने की ज़रूरत एक जैसी होने के बावजूद किसी खास ऐतिहासिक संदर्भ में वैध निष्कर्ष और दिशा भिन्न स्थिति में अपनी सटीकता खो सकती है। इसलिए समाजवादी आंदोलन के आचरणों और नीतियों के संदर्भ में हमें शास्त्रीय मार्क्सवाद की कुछ दिशाओं पर और उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में तथा समूची बीसवीं सदी के दौरान आने वाले मुद्दों (अर्थात् समाजवादी क्रांति की कार्यनीति और रणनीति, समाजवादी क्रांति की स्थितियों की परिपक्वता, सर्वहारा के आंदोलन के लिए आवश्यक पार्टी का स्वरूप, साम्राज्यवाद की प्रकृति और कार्यशैली) पर ध्यान देना चाहिए।

1871 में पेरिस कम्यून की पराजय के बाद यूरोप के मजदूर आंदोलन को अनेक अति वामपंथी संगठनों और अराजकतावादियों की खींचतान का सामना करना पड़ा। इसी पृष्ठभूमि में इंटरनेशनल का मुख्यालय हटा कर न्यूयार्क ले जाना पड़ा। बाद में 1876 में इसे भंग कर दिया गया। इसे भंग करने के बारे में जो बयान जारी किया गया था, उसमें अन्य बातों के अलावा, निम्नांकित टिप्पणी शामिल थी — 'हमें यूरोप के अपने मजदूर साथियों को थोड़ा और समय देना चाहिए ताकि वे अपने राष्ट्रीय मामलों को मजबूत करें और वे निश्चय ही ऐसी स्थिति में होंगे जिससे विश्व के अन्य हिस्सों में रह रहे मजदूरों और खुद के बीच बने अवरोधों को दूर कर सकें।'

1848 और 1876 के दौरान यूरोप के इतिहास में कई उतार चढ़ाव आए। कुल मिलाकर इस जटिल प्रक्रिया की मुख्य विशिष्टता पूँजीवादी सत्ता के सुदृढ़ीकरण के विभिन्न उदाहरणों में प्रकट हुई जो कुछ देशों में सामंती तत्त्वों के साथ इस समय एकजुटता में देखने को मिली जब मजदूर वर्ग ने समाज के लक्ष्य को ध्यान में रखकर विद्रोह किया था।

मार्क्स की मृत्यु 1883 में हुई। छः वर्ष बाद जुलाई 1889 में पेरिस में दूसरे इंटरनेशनल की बैठक हुई जिसमें 20 देशों के 391 प्रतिनिधियों ने भाग लिया और यह उस समय विश्व श्रमिक इतिहास में सबसे बड़ा अंतर्राष्ट्रीय मजदूर सम्मेलन था। यह उन ट्रेड यूनियनों और वैधानिक मार्क्सवादियों का सम्मेलन था जो पूँजीवादी ढाँचे में ही थोड़ा फेरबदल कर समाजबाद का लक्ष्य प्राप्त करने में यकीन रखते थे। इस तरह की शक्तियों के सम्मेलन का ऐंगल्स ने विरोध किया था हालाँकि दोनों सम्मेलनों में इस तरह के विलय का प्रस्ताव था। जो भी हो, यह विलय 1891 में ब्रसेल्स सम्मेलन में संभव हो सका।

अनेक ऐतिहासिक उतार चढ़ाव के बाद जिनका पहले उल्लेख किया गया है, पूँजीवाद के विकास के फलस्वरूप यूरोप के ज़्यादा से ज़्यादा देशों में वेतनभोगी मजदूरों की तादाद में वृद्धि होने लगी। इसी तरह की प्रवृत्तियाँ उत्तरी अमेरिका में और सदी के अंत तक जापान में दिखायी देने लगीं। इसके साथ-साथ सभी पूँजीवादी देशों में ट्रेड यूनियन आंदोलन का काफी विस्तार हुआ। इसके अलावा अपेक्षाकृत ज़्यादा विकसित पूँजीवादी देशों में खास तौर से ब्रिटेन में उत्पादकता में वृद्धि तथा साम्राज्यवादी शोषण से इकट्ठा की गयी पूँजी से बुर्जुआ वर्ग ने एक नए तरह की तिकड़म शुरू की। उसने मजदूर वर्ग के एक हिस्से को ज़्यादा मजदूरी तथा अन्य रियायतें देकर मजदूरों के एक वर्ग और शेष सर्वहारा के बीच भेदभाव की कोशिश की। इस प्रवृत्ति पर टिप्पणी करते हुए ऐंगल्स ने 7 अक्टूबर 1858 को मार्क्स के नाम एक पत्र में लिखा- '... ब्रिटिश सर्वहारा ज़्यादा से ज़्यादा बुर्जुआ होता जा रहा है... एक ऐसे देश में जो समूची दुनिया का शोषण कर रहा हो, बेशक यह कुछ हद तक जायज है।'

कम्युनिस्ट घोषणापत्र ने अपने लक्ष्य को हासिल करने के लिए पुरानी पड़ चुकी समूची समाज व्यवस्था को ताकत के जरिए उखाड़ फेंकने का एलान किया था। ताकत के साथ उखाड़ फेंकने के लिए सशस्त्र संघर्ष ज़रूरी नहीं भी हो सकता। मार्क्स का मानना था कि ब्रिटेन और हालैण्ड जैसे देशों में जहाँ आबादी का बहुमत मजदूर वर्ग से आता था और पूँजीवादी रूपांतरण जनतंत्र के शुरू होने से जुड़ा था, सबके लिए वयस्क मताधिकार के जरिए ऐसे उपाय मिल सकते थे जो समाजवाद का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए राजनीतिक सत्ता तक पहुँचा दें। 'प्रिंसिपल्स ऑफ कम्युनिज्म' में ऐंगल्स ने टिप्पणी की कि शांतिपूर्ण तरीकों से निजी संपत्ति की समाप्ति बेहद वांछनीय है। कम्युनिस्ट हमेशा षड्यंत्रकारी तरीकों से बचते रहे हैं। लेकिन अगर उत्पीड़ित सर्वहारा के अंदर क्रांति के लिए कोई उभार होता है तो उसके समर्थन के लिए कम्युनिस्ट तुरंत पहुँचेंगे।

मार्क्स के 'क्लास स्ट्रगल्स इन फ्रांस' के 1895 के संस्करण की अपनी भूमिका में ऐंगल्स ने लिखा कि सैनिक अभियानों की नयी तकनीकों ने जन क्रांतिकारी कार्यवाइयों के दौरान अवरोध खड़े कर लड़ने की जो परंपरागत तरीका था, उसके सामने काफी मुश्किलें पैदा कर दीं। यह दुस्साहसपूर्ण कार्रवाइयों के खिलाफ एक चेतावनी थी – न कि सभी परिस्थितियों में सशस्त्र संघर्ष त्यागने की सलाह। लेकिन जर्मनी की सोशल डेमोक्रेटिक पाटी में नेतृत्व के एक हिस्से द्वारा ऐंगल्स के इस उद्धरण का इस्तेमाल तय समय पर यह बताने के लिए किया जाता रहा कि समाजवादी लक्ष्यों को धीरे-धीरे, शांतिपूर्ण और संसदीय कार्यनीतियों से हासिल किया जा सकता है।

एडुआर्ड बर्नस्टाइन (1850-1932) शांतिपूर्ण तरीकों के एक प्रमुख प्रस्तावक थे। उन्होंने सशस्त्र संघर्ष और सर्वहारा के अधिनायकत्व से संबंधित शास्त्रीय मार्क्सवादी स्थिति को हमेशा खारिज किया। औद्योगिक केन्द्रीकरण, आर्थिक संकट की अपरिहार्यता तथा मजदूर वर्ग की मुसीबतों में

वृद्धि के शास्त्रीय मार्क्सवादी दृष्टिकोण से भी बर्नस्टाइन असहमत थे। उनका रुझान समाजवाद को नैतिक आधार पर समर्थन देने की ओर था। राइखस्टाग (जर्मनी की संसद) के सोशल डेमोक्रेटिक सदस्य के रूप में उन्होंने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान युद्ध ऋणों के खिलाफ मतदान किया था और शांति समझौते की मांग की थी। जर्मनी की सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी के एक अन्य महत्त्वपूर्ण सदस्य तथा द्वितीय इंटरनेशनल के प्रमुख व्यक्तित्व कार्ल काउत्स्की (1854-1938) थे जिनकी ऐतिहासिक भौतिकवाद की समझ जैविक विकास और प्राकृतिक चलन से संबंधित डार्विन के सिद्धांत की तरह वस्तुओं को एक सहज विकास क्रम में देखती थी। इस हिसाब से वह मानते थे कि विकसित हो रही उत्पादक शक्तियों के कुशल इस्तेमाल में अपनी खुद की अक्षमता के कारण पूँजीवाद अपने आप ही ध्वस्त हो जाएगा। इसलिए सर्वहारा क्रांति की तर्कसंगतता और संभाव्यता को पूरी तरह खारिज कर दिया गया। क्योंकि अपने फरमानों और हिंसा के जरिए सर्वहारा का कोई भी अधिनायकत्व वस्तुगत आर्थिक नियमों पर हावी नहीं हो सकता। बर्नस्टाइन और काउत्सकी को 'संशोधनवादी' कहा गया हालाँकि उनके बीच आपसी मतभेद भी थे। 'संशोधनवादी' कहने का निहितार्थ यह था कि उन्होंने वर्ग संघर्ष और क्रांति की शास्त्रीय मार्क्सवादी अवस्थिति से कथित तौर पर प्रस्थान कर लिया।

काउत्सकी ने रूस में 1917 में हुई बोल्शेविक क्रांति को एक ऐसी घटना के रूप में देखा जो शास्त्रीय मार्क्सवाद के अनुरूप नहीं था। इसका संबंध रूस में अपर्याप्त पूँजीवादी विकास की पूर्ववर्ती परिस्थितियों से था। काउत्सकी ने उस मुद्दे को उठाया जिस पर ऐतिहासिक भौतिकवाद ने जोर दिया था जिसका संबंध उत्पादन प्रणाली के ध्वस्त होने योग्य आर्थिक विकास की परिपक्वता से था। ('कोई भी सामाजिक व्यवस्था तब तक समाप्त नहीं होती है जब तक सभी उत्पादक शक्तियाँ, जिनके लिए वहाँ गुंजाइश बनी है विकसित न हो जायं') ब्लादीमीर इलिच लेनिन (1870-1924) ने रूस में पूँजीवाद के विकास का विश्लेषण सुव्यवस्थित ढंग से किया (*डेवलपमेंट ऑफ कैपिटलिज़्म इन रशिया,* 1899)। उन्होंने रूस के पिछड़ेपन से इनकार नहीं किया। वस्तुतः रूस के बुर्जुआ वर्ग की कमजोरी उन कारकों में से एक थी जिनकी वजह से बोल्शेविकों को राजसत्ता पर कब्जा करने में मदद मिली। सीधे सपाट शब्दों में यह कहा गया, जो शायद थोड़ा बेतुका भी लगे, कि ऐसा लगता था कि रूस का बुर्जआ जारशाही निरंकुशता के खिलाफ अपनी खुद की स्थिति बचाने में अक्षम था और उसके लिए यह लाजिमी हो गया कि सर्वहारा के नेतृत्व में राज्य की समाजवादी कमान सौंप दें जैसा कि लेनिन ने लिखा :

> 'यह रूस का भाग्य था जो बहुत साफ तौर पर देख रहा था और बेहद उत्सुकता और तकलीफ के साथ महसूस कर रहा था इतिहास के अत्यंत अकस्मात आए मोड़ को जो साम्राज्यवाद से कम्युनिस्ट क्रांति की ओर जा रहा था। महज कुछ दिनों के अंदर ही हमने सबसे पुराने, अत्यंत शक्तिशाली, अत्यंत बर्बर और क्रूर राजतंत्रों में से एक को ध्वस्त कर दिया। कुछ ही महीनों के अंदर हम अनेक अवस्थाओं से गुजरे, पूँजीपति वर्ग (बुर्जुआजी) के साथ समझौते की और निम्न पूँजीवादी (पेटी बुर्जुआ) भ्रांतियों को ध्वस्त करने की अवस्थाओं से, जिनके लिए अनेक देशों ने कई दशक लगा दिये।'

लेनिन रूसी साम्राज्यवाद का उपरोक्त उद्धरण में उल्लेख करते हैं। पूँजीवाद की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण विशिष्टता का विश्लेषण लेनिन ने *इंपीरियलिज़्म, दि हायस्ट स्टेज ऑफ कैपिटलिज़्म* (1916) में किया है। 'कैपीटल' के पहले खंड में मार्क्स ने बताया है कि किस प्रकार प्रतिस्पर्धात्मक पूँजीवाद अनिवार्य रूप से पूँजी के ज़्यादा से ज़्यादा केंद्रीकरण और इजोरदारी के उदय की दिशा लेता है। मार्क्स की दलील है कि यही वह प्रक्रिया है जो सर्वहारा की तादाद बढ़ाता जायेगा और पूँजीवाद के लिए सर्वनाश का कारण बनेगा। इस तरह की शास्त्रीय मार्क्सवादी अवस्थिति का विस्तार लेनिन द्वारा इजारेदार पूँजीवाद और साम्राज्यवाद

के संबंधों की खोज में किया गया जो अंतर्राष्ट्रीय विभाजन और विश्व पर प्रभुत्व कायम करने के लिए आमादा था। अधीनस्थ इलाके पूँजी के निर्यात के लिए लक्ष्य बनाये गये ताकि सस्ते श्रम और कच्चे माल का इस्तेमाल किया जा सके। प्रथम विश्वयुद्ध इस तरह की आकांक्षाओं और संघर्षों का साम्राज्यवादी युद्ध था। निश्चय ही जार के अन्दर रशिया और इसका कमतर विकसित पूँजीवाद साम्राज्यवादी श्रृंखला की सबसे कमजोर कड़ी था। लेनिन ने 1917 में रूसी क्रांति की प्रक्रिया को तेज करने और पूँजीवाद के स्थान पर समाजवाद को प्रतिस्थापित करने के कारणों में से इसे एक कारक के रूप में देखा। इससे यह संभावना प्रबल हुई कि विश्व क्रांति की स्थिति में यह पूँजी के अंतर्राष्ट्रीय विध्वंस में योगदान करेगा।

साम्राज्यवाद का काउत्सकी का विश्लेषण भिन्न था। उनकी दलील थी कि साम्राज्यवादी युग विकसित पूँजीवादी देशों के बीच संघर्ष से मुक्त है। इस युग में दुनिया के केवल विकसित और अल्पविकसित देशों के बीच संघर्ष चलेगा। अल्पविकसित देशों के शोषण की प्रक्रिया जरूरी नहीं कि उपनिवेशों से प्राप्त साम्राज्यवादी संपदा के जरिए अथवा, आर्थिक संदर्भों में देखें तो, सस्ते श्रम और कच्चे माल की वजह से इकट्ठा की गयी अतिरिक्त धनराशि के जरिए ही हो। यह कम और अधिक पूँजी केन्द्रित उत्पादन से जो माल पैदा होता है उनके बीच विनिमय की शर्तों के जरिए भी हो सकता है। निश्चय ही द्वितीय विश्व युद्ध के बाद काउत्सकी के विश्लेषण के अवयवों ने एक तरह से 'निर्भरता के सिद्धांत' को प्रभावित किया जिसमें पिछड़े देशों पर साम्राज्यवादी प्रभुत्व की बात कही गयी है। और ऐतिहासिक संदर्भों में देखें तो दुनिया के पूँजीवादी देशों के बीच अमेरिका की सर्वोच्च स्थिति को स्वीकार किया गया है। पिछली शताब्दी के अंतिम दशक में सोवियत संघ के विघटन के बाद इस सर्वोच्च स्थिति का दायरा और भी मजबूत हुआ और कुछ भी कहें पर न तो शास्त्रीय मार्क्सवाद में या इसके बाद के विकास में ऐसा कोई ऐतिहासिक नियम है जो अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर उत्पादन और प्रसार दोनों में मुनाफे के अस्तित्व में बाधक बन सके।

मार्क्स और ऐंगल्स ने एक राजनीतिक दल बनाने की ज़रूरत पर जोर दिया क्योंकि उनके अनुसार बिना ऐसी पार्टी के 'मजदूर वर्ग एक वर्ग के रूप में काम नहीं कर सकता।' कम्युनिस्ट लीग और प्रथम इंटरनेशनल के वर्षों के दौरान वे दोनों लोग आम तौर पर इतिहास के मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य, वर्ग संघर्ष और पूँजीवाद की समाप्ति पर अपनी बातें कहने और स्पष्टीकरण देने में व्यस्त रहे। द्वितीय इंटरनेशनल में हमने देखा कि यूरोप के विभिन्न पूँजीवादी देशों में राष्ट्रीय स्तर पर सोशल डेमोक्रेटिक पार्टियों का काफी उभार रहा।

दूसरे इंटरनेशनल की अवधि से संबंधित सैद्धांतिक प्रश्नों पर विस्तार से चर्चा करने से पूर्व इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि भले ही पेरिस कम्यून का अस्तित्व कम समय के लिए रहा तो भी पहले इंटरनेशनल के दौर की यह बहुत बड़ी घटना थी। अपने विकेन्द्रित और जनतांत्रिक चरित्र के कारण पेरिस कम्यून के बारे में मार्क्स का आकलन था कि इसने सर्वहारा के अधिनायकत्व के तरीकों और साधनों का जबर्दस्त उदाहरण प्रस्तुत किया। यहीं क्रांति को विजय तक पहुँचाने और फिर क्रांतिकारी ढंग से शासन व्यवस्था संचालित करने – दोनों के मामले में सर्वहारा की पार्टी की मध्यस्थता का सवाल पैदा होता है।

अनेक तीखे आलोचनात्मक मतभेदों के बावजूद लेनिन और काउत्सकी इस मुद्दे पर एकमत थे कि सर्वहारा के अंदर राजनीतिक चेतना बाहर से डालनी होगी। यह यांत्रिक तरीके से खुद-ब-खुद उनकी आर्थिक मुसीबतों और संघर्षों के कारण नहीं पैदा हो जाएगी जिसका क्षेत्र केवल ट्रेड यूनियन की चेतना तक ही सीमित है। इससे पहले 'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' में मार्क्स और एंगिल्स ने उन बुर्जुआ विचारकों की भूमिका का जिक्र किया था

जिन्होंने समग्र रूप से ऐतिहासिक गतिशीलता की सैद्धांतिक समझ हासिल कर ली थी। वे मजदूर वर्ग को क्रांतिकारी चेतना से लैस करने की भूमिका का निर्वाह कर सकते थे। इसमें कोई शक नहीं कि चेतना निर्माण की इस तरह की प्रक्रिया मध्यस्थता की जटिलता को बढ़ाती है और एक ऐसी पार्टी का स्वरूप प्रस्तुत करती है जो इस संकल्प को पूरा कर सके।

उन दिनों यूरोप के कई देशों में और खास तौर पर रूस में जो निरंकुशता थी तथा राजनीतिक काम को वैधानिक ढंग से करने पर रोक थी उसको ध्यान में रखते हुए लेनिन ने पेशेवर क्रांतिकारियों की पार्टी बनाने के बारे में सोचा जिसमें पदाधिकारियों की एक क्रमबद्धता हो ('वाट इज टू बी डन?', 1902)। 1905 की रूसी क्रांति के बाद उन्होंने इस संगठन को विस्तार देते हुए बड़ी पार्टी बनाने की बात कही लेकिन साथ ही यह भी कहा कि इसमें जनवादी केन्द्रियता का कड़ाई के साथ पालन हो। केन्द्रियता के सवाल पर ही रूस में बोलशेविकों और मेनशेविकों के बीच विभाजन शुरू हुआ। लियान ट्राटस्की (1879-1940) ने केन्द्रियता का समर्थन नहीं किया। जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी की रोजा लग्ज़मबर्ग (1871-1919) अत्यंत केन्द्रीकृत हिरावल पार्टी के लेनिन के विचार के विरुद्ध थीं। उन्होंने मजदूरों की खुद की पहल और उनके स्वयं के क्रियाकलापों को आगे बढ़ाने पर जोर दिया और जाहिर किया कि उन्हें मजदूर वर्ग की इस क्षमता पर पूरा विश्वास है कि वे अपने अनुभवों से ही शिक्षा ग्रहण कर लेंगे।

20वीं शताब्दी में सारी दुनिया में कम्युनिस्ट आंदोलन के जो अनुभव हुए, इसकी सफलताओं और विफलताओं का जो दृश्य देखने को मिला, मृत शैया पर पड़े लेनिन ने पार्टी के अंदर नौकरशाहीपूर्ण ज्यादती के बारे में जो आशंका व्यक्त की और अंतत: पिछली शताब्दी के अंतिम दशक में सोवियत साम्यवाद का जो पतन हुआ उससे निश्चय ही सर्वहारा की पार्टी के संगठन के मामले में उचित सिद्धांतों को लेकर सवाल पैदा होते हैं। यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि सर्वहारा के प्रति शास्त्रीय मार्क्सवाद ने जो ऐतिहासिक भूमिका निभायी, 'उसका निर्धारण किसी अदृश्य बौद्धिक वर्ग ने किया, ऐसे बौद्धिक वर्ग ने जिसने अपने सिद्धांत में कभी खुद को प्रकट नहीं किया था और इसीलिए जिसके अस्तित्व और प्रकृति की व्यवस्थित रूप से खुद उसको भी जानकारी नहीं थी।'

शास्त्रीय मार्क्सवाद ने पूँजीवाद की कल्पना एक ऐसी विश्व व्यवस्था के रूप में की थी जिसमें व्यापार, पूंजी निर्यात और साम्राज्यवादी प्रभुत्व का एक मेल हो। वास्तविक इतिहास में पूँजी की विजय और विश्व स्तर पर इसकी भूमिका का असर पूर्व-पूँजीवादी ढाँचे पर पड़ा। इस फर्क को हम कई तरीकों से पूँजीवादी और पूर्व पूँजीवादी उत्पादन पद्धतियों में देख सकते हैं। इस तरह के स्वरूप अतिरिक्त मूल्य के शोषण की गुंजाइश पैदा करते हैं हालाँकि पुरानी उत्पादक व्यवस्थाएँ और संस्थाएँ मोटे तौर पर अपरिवर्तित रहती हैं। वैसी परिस्थिति में विभिन्न अवस्थाओं के बारे में मार्क्सवाद ने जो कहा है उस पर ऐतिहासिक संक्रमण की नयी-नयी संभावनाओं की रोशनी में विचार करना होगा।

सामंतवाद से पूँजीवाद की तरफ जाना ही अब काफी नहीं है। वस्तुत: जिस समय पूंजीवाद और पूँजीवाद से पूर्व की स्थिति शोषण और सत्ता के मामले में अपने तरीकों में एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई हों तो प्रगति के संदर्भों में इससे कोई खास लाभ भी नहीं होने जा रहा है। शोषण और सत्ता के संदर्भ में पुराने और नए के बीच जो संबंध कायम हुआ उसके पीछे जो ऐतिहासिक कारण थे उनकी व्याख्या करने में मार्क्स और ऐंगल्स ने कभी ढिलाई नहीं बरती। पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका से बाहर के देशों में समय-समय पर यह स्थिति देखने में आयी है। निश्चय ही ऐसा हो सकता है कि बुर्जुआ जनवादी क्रांति को कमजोर और जर्जर पूँजीपति वर्ग द्वारा आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। ऐसी हालत में यह जिम्मेदारी

सर्वहारा के ऊपर आ जाती है और फिर उन्हें तुरंत ही सामंती व्यवस्था को समाप्त करने के बाद पूँजीवाद को समाप्त करने की दिशा में संघर्ष को बढ़ाना होगा। इस तरह के क्रांतिकारी यथार्थ को 'स्थायी क्रांति' कहा गया और यह विचार ट्राटस्की ने प्रस्तुत किया। इसकी अभिव्यक्ति पहली बार मार्क्स और ऐंगल्स ने 1850 में कम्युनिस्ट लीग की जनरल कौंसिल में भाषण के दौरान की थी।

अभी तक हमने इसका कोई संकेत नहीं दिया कि पूँजीवाद के विरुद्ध अंतर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग की क्रांति के लिए वांछित एकता की दिशा में क्या हुआ। 1917 के बाद इतिहास की मार्क्स की सैद्धांतिक योजना को मूर्त रूप देने के बारे में समाजवाद में संक्रमण से संबंधित किसी ऐतिहासिक परिवर्तन के क्रम में व्यक्त नहीं किया गया। बोलशेविक पार्टी के नेताओं की अवधारणा थी कि रूस की अक्टूबर क्रांति अंतर्राष्ट्रीय सर्वहारा क्रांति के एक नए युग का सूत्रपात करेगी। 4 वर्षों तक चले विश्वयुद्ध में पराजय के बाद छिन्न भिन्न हुए जर्मनी से यह उम्मीद की जा रही थी कि उन्नत पूँजीवादी देशों में वह पहला देश होगा जो अपने यहाँ समाजवादी क्रांति को अंजाम देगा। इतिहास के तथ्य इससे भिन्न थे। बोलशेविक रूस को किसी एक देश में समाजवाद की स्थापना का बोझ ढोना पड़ा। यह एक ऐसा एजेंडा था जिसे शास्त्रीय मार्क्सवादी परंपरा से कोई मदद नहीं मिली। 20वीं शताब्दी में एक और महत्त्वपूर्ण समाजवादी संक्रमण चीन में देखा जहाँ क्रांति की प्रमुख प्रेरक शक्ति के रूप में किसानों ने भूमिका निभायी थी। कम्युनिस्टों द्वारा यहाँ सत्ता दखल के बाद जो घटनाएँ घटित हुई उनसे अनेक ऐसे सवाल पैदा हुए जिनका सीधा-सीधा जवाब शास्त्रीय मार्क्स परंपरा में नहीं है। इसी प्रकार क्यूबा, चीली और वियतनाम के उदाहरण भी सामाजिक राजनीतिक रूपांतरण के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर शास्त्रीय मार्क्सवादी नजरिए से अपवाद कहे जाएँगे।

उल्लेखनीय बात है कि अपने जीवन के अंतिम दशक में मार्क्स रूस के प्राक पूँजीवादी ग्रामीण कम्युनों के आलोचनात्मक अध्ययन में शामिल थे। ऐसा उन्होंने रूसी नारोद्निक वेरा जासूलीच, डेनियलसन जैसे नेताओं द्वारा उन कम्युनों की समाजवादी संक्रमण की क्षमता के संबंध में उठाए गए प्रश्नों का हल ढूंढने के लिए किया था जिसमें कहा गया था कि यद्यपि न तो देश पूँजीवादी विकास की दृष्टि से इतना परिपक्व हुआ था और न सर्वहारा का इस हद तक विकास हुआ था तो भी उन कम्युनों में इतनी संभावनाएँ थीं कि सामाजिक रूपांतरण को तेज करने का वे काम कर सकें। मार्क्स ने इसे स्पष्ट कर दिया था कि 'पूँजी' में उनकी सैद्धांतिक अवस्थिति पश्चिमी यूरोप के अनुभव के लिए ही और खास तौर से ब्रिटेन के पूँजीवादी विकास के लिए ही वैध है और अन्य संदर्भों में स्थितियों को समझने के लिए अगर उन सूत्रों का इस्तेमाल किया गया तो यह बेहद गलत होगा। जहाँ तक रूसी कम्युनों की समाजवादी संभावना के हासिल करने का सवाल है मार्क्स ने जार के राजतंत्र को समाप्त करने की ज़रूरत पर बल दिया और इस संभावना को व्यक्त किया कि पश्चिमी यूरोप के देशों में समाजवादी क्रांति से इसे जोड़ा जा सकता है। मार्क्स ने कम्युनों में अंतर्निहित दो ऐतिहासिक प्रवृतियों में भेद किए-निजी स्वामित्व का सिद्धांत जो कम्युन की भावना को समाप्त कर रही थी और सामूहिकता का सिद्धांत जो कम्युन की संभाव्यता को स्थापित कर रही थीं और सामाजिक रूपांतरण के लिए इसे उचित ठहरा रही थी। मार्क्स ने वेरा जैसूलिच को लिखे गए पत्र के तीन प्रारूपों में इस विचार पर विस्तार से लिखा था।

1880-82 के दौरान मार्क्स ने प्राक पूँजीवादी सामुदायिक भू-स्वामित्व से संबंधित साहित्य का गहरा अध्ययन किया। ऐसा लगता है कि मार्क्स ने उसमें यह सूत्र पढ़ लिया कि 'आधुनिक मनुष्य किसी सामुदायिक अवयव से अलग नहीं है जिसमें शामिल है उसके सामाजिक प्राणी के रूप में जनतांत्रिक और समता मूलक संरचना।'

13.6 सारांश

जैसा कि देखा गया कि 20वीं शताब्दी में शुरू से अंत तक मार्क्सवाद का इतिहास अनेक उतार-चढ़ाव से और अंतर्विरोधों से भरा रहा। यहाँ तक कि उनके खुद के अनुयायियों में भी यह बात देखने को मिली। एक देश से दूसरे देश तक पूँजीवादी रणनीतियों की भिन्नताओं में तथा पूँजीवाद की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में जो तरह-तरह की व्याख्याएँ और घटनाएँ सामने आयीं उनमें भी यह बात देखने को मिली। मार्क्स ने अपने अध्ययन का जो दायरा तय किया था और ऐतिहासिक निष्कर्ष तक पहुँचने की जो पद्धति ढूँढी थी उनकी चुनौतियों से भी वह परिचित थे। इसे हम उनकी विश्लेषणात्मक रचनाओं में देख सकते हैं जो 'लुई बोनापार्ट की 18वीं ब्रुमेर' (1852) में दिखायी देती है और जिसका संबंध फ्रांस के पूँजीवादी संक्रमण में आए ठहराव से है। इसी प्रकार अपने जीवन के अंतिम वर्षों में प्राक पूँजीवादी एशियाई गाँवों की विशिष्टताओं की उनकी तलाश में भी हम इसे पाते हैं।

इस प्रकार शास्त्रीय मार्क्सवाद के इतिहास-लेखन से संबंधित निहितार्थ काफी प्रचुर मात्रा में है। ऐतिहासिक भौतिकवाद के दायरों के बारे में मनमानेपन या कठमुल्लापन से काम नहीं चलाया जा सकता। शास्त्रीय मार्क्सवाद ने ऐतिहासिक परिवर्तनों के भविष्य के बारे में जो बातें कहीं थीं, हो सकता है बाद की घटनाएँ उन पर पूरी तरह खरी न उतरी हों। लेकिन शास्त्रीय मार्क्सवाद में ही ऐसा न होने के कारणों का भी पता चलता है और सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक आयामों के साथ इसके संबंधों के ऐतिहासिक अनुभव के भी अन्वेषण का रास्ता दिखायी देता है।

विभिन्न आयामों के प्रति संवेदनशीलता का पता मार्क्स और ऐंगल्स के उल्लेखनीय ऐतिहासिक लेखन में होता है। इसके अलावा ऐतिहासिक भौतिकवाद किसी भी परिघटना की प्रासंगिकता को आंशिक तौर पर या उसकी समग्रता में रेखांकित करता है क्योंकि उनकी संबंधों की उचित समझ द्वंद्वात्मक पद्धति की कुंजी है। निश्चय ही फ्रांस के *अनाल* धारा के लोगों ने इतिहास-लेखन के क्षेत्र में शायद बेहद अभिनव प्रयोग किए और इनसे पता चलता है कि मार्क्सवादी इतिहास-लेखन में सूक्ष्म अध्ययन के प्रति कैसा सरोकार होना चाहिए।

13.7 अभ्यास

1) मार्क्स से पहले के समाजवादी विचारों और मार्क्सवाद के बीच अंतर पर चर्चा करें।

2) मार्क्स के उत्तराधिकारियों के ऐतिहासिक तथा अन्य विचारों पर एक टिप्पणी लिखें।

3) मार्क्स के विचारों का समय के साथ कैसे विकास हुआ? उदाहरणों के साथ स्पष्ट करें।

4) इतिहास के बारे में मार्क्सवादी सिद्धांत का आप किस तरह मूल्यांकन करते हैं?

13.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

टॉम बाटमोर (सम), *ए डिक्शनरी ऑफ मार्क्सिस्ट थॉट* (ब्लाइवेल रिफरेंस, आक्सफोर्ड, 1983) (इसमें कार्ल मार्क्स ऐंगल्स और समकालीन राजनीतिक पार्टियों, रोजा लग्जमवर्ग, वी आई लेनिन, पूँजी, लियॉन ट्राटस्की, कार्ल काउत्सकी, हिस्टोरियोग्राफी, ऐतिहासिक भौतिकवाद संबंधी प्रविष्टियों को देखें)

डेविड रियाजानोव, *कार्ल मार्क्स एण्ड फ्रेडरिक ऐंगल्स* (मंथली रिव्यू प्रेस, न्यूयार्क और लंदन, 1973)

लेसजेक कोलाकोवस्की, *मेन करेंट्स ऑफ मार्क्सिज्म*, खंड एक (आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971)

टी जेड लेविन, *फ्रॉम सोक्रेटिज टू मार्क्स : द फिलोसोफिक क्वेस्ट* (बंटम बुक्स न्यूयार्क/लंदन, 1984, भाग-4 और 5)

पी एन फेदोऐव, *कार्ल मार्क्स ए बायोग्राफी,* (प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को, 1973) अध्याय-15

जी डी एच कोल, *सोशलिस्ट थॉट; दि फोरर्नस 1789-1850* (मैकमिलन, लंदन, 1955)

मार्क्स और ऐंगिल्स के लेखन के लिए देखें -- *अर्ली राइटिंग्स, दि रिवोल्यूशंस ऑफ 1848, सर्वेज फ्राम एग्जाइल, ग्रंडरिसे, दि फर्स्ट इंटरनेशनल एंड ऑफ्टर* (सभी पेलिकन मार्क्स लाइब्रेरी में उपलब्ध) और *कार्ल मार्क्स सेलेक्टेड वर्क्स,* खण्ड-1 (मास्को, 1946)

इकाई 14 *अनाल* स्कूल

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

इतिहास-लेखन के *अनाल* स्कूल को 20वीं शताब्दी के इतिहास-लेखन से संबंधित महत्त्वपूर्ण घटनाओं में से एक माना जाता है। 1929 में मार्क ब्लाक और लूसियाँ फेबव्र ने *अनाल दिस्तुआर इकोनोमिक ए सोसिआल* (एनल्स ऑफ एकोनॉमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री) नामक पत्रिका की स्थापना के साथ इस धारा की विधिवत शुरुआत की। विषय-वस्तु के विस्तार तथा पद्धतियों में अभिनव प्रयोगों के अर्थ में देखें तो फ्रांस में इस स्कूल की बड़ी प्रमुख भूमिका रही और इसने कई दशकों तक अन्य अनेक देशों में इतिहास-लेखन को प्रभावित किया तथा दुनिया भर में इसके अनुयायी पैदा हुए। इस इकाई में आप इसके प्रादुर्भाव के संदर्भ के बारे में तथा इतिहास-लेखन में इसके योगदान तथा इतिहास-लेखन संबंधी विविध नयी प्रवृत्तियों को जन्म देने में इसकी भूमिका का पता चलेगा।

14.2 सामाजिक और बौद्धिक संदर्भ

1920 के दशक में फ्रांस में दो परस्पर विरोधी घटनाएँ देखने को मिलीं : प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका था और पेरिस के निकट वर्साई में फ्रांस के प्रधानमंत्री क्लेमेंसू की अध्यक्षता में इसका विधिवत समापन किया जा चुका था। इस प्रकार यह शेष यूरोप की सामूहिक विजय से कहीं बढ़कर प्रतीकात्मक तौर पर फ्रांस की अपने परंपरागत प्रतिद्वंद्वी जर्मनी के ऊपर विजय थी। फ्रांस के महान प्रभाववादी चित्रकार क्लाद मोने ने अपनी अत्यंत मशहूर कृति *ला निम्फियास, दि वाटर लिलीज*, को विजय के बाद फ्रांस को भेंट किये गये फूलों के एक गुलदस्ते के रूप में चित्रित किया और एकदम पेरिस के मध्य में '*ला ओरेंजेरी*' नामक संग्रहालय बनाया गया जहाँ इसका प्रदर्शन किया जा सके। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि फ्रांस की हवा में महोत्सव की गंध फैल गयी थी।

लेकिन महान आर्थिक मंदी की छाया धीरे-धीरे मंडराने लगी थी और दशक के उत्तरार्द्ध में अवसाद के संकेत भी दिखायी देने लगे थे। यह तय था कि यह मंदी जल्दी ही सारी दुनिया के समाजों और अर्थव्यवस्थाओं को अपनी चपेट में लेने वाली थी और जो भी इसकी चपेट में एक बार आ जाएगा उसे बहुत कुछ खोना पड़ेगा। फ्रांस भी उन्हीं देशों में से एक था।

चारों तरफ एक बेचैनी थी जो देखी जा सकती थी, एक पहेली थी जिसने सबको उलझन में डाल दिया था। यह कैसे संभव हो सका कि कोई राष्ट्र जिसने अभी अभी अपने पुराने और

शक्तिशाली दुश्मन पर विजय पायी हो इतनी लाचारी के साथ असहाय करने वाली परिस्थिति का साक्षात्कार करता है? यह बिलकुल नयी स्थिति थी जिसने एक ऐसा सवाल खड़ा कर दिया था जिसे एक नये और सबको समाविष्ट करने वाले जवाब की ज़रूरत थी। पुराने जवाब अपनी प्रकृति से ही अपर्याप्त थे। नये जवाबों के लिए नये परिप्रेक्ष्यों और नयी पद्धतियों की ज़रूरत थी। इस नयी तलाश में अगर इतिहास को कुछ करना है तो उसे सबसे पहले खुद से सवाल कर अपना नवीकरण करना होगा। इतिहास-लेखन के आत्मनवीकरण का यह सामाजिक संदर्भ था जिसे *अनाल दिस्तुआर इकोनोमिक ए सोसिआल* की स्थापना ने रेखांकित किया।

इसके अलावा इसका एक बौद्धिक संदर्भ भी था। 19वीं शताब्दी ने अनेक नये विषयों को जन्म लेते देखा था जिसमें सामाजिक और सांस्कृतिक मानव विज्ञान, मानव भूगोल और मनोविज्ञान उल्लेखनीय थे। ये विषय बिलकुल नये और ऊर्जा से भरे थे लेकिन इनको व्यवहार में लाने वाले इतिहास जैसे पुराने विषय की ओर संदेह से देखते थे। खासतौर पर दुर्खाइमवादी समाजशास्त्र काफी विस्तृत और महत्त्वाकांक्षी था जो यह दावा करता था कि किसी व्याख्या को समग्र रूप देने की उसकी क्षमता है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह सामाजिक गतिशीलता के समूचे क्षेत्र को व्याख्यायित करता था। मानव भूगोल भी इस तरह के दावों से बहुत दूर नहीं था और यह संगठन के सामाजिक, सांस्कृतिक और संस्थागत स्वरूपों पर केंद्रित था।

'किसी खास घटना' जो अनोखी, अल्पकालिक, तात्कालिक और क्षणभंगुर होने के बावजूद इतिहास के लिए जब विशेष सरोकार का कारण बनती है तो ऐसे समय में भी इतिहास को एक हद तक उपहास का विषय बनना पड़ा है। उस समय इतिहास का अध्ययन किस तरह किया जाता था : किसी के शासन या किसी के वंश में हुए परिवर्तन पर ध्यान केन्द्रित करते हुए, युद्धों, लड़ाईयों या प्रशासनिक उपायों का ब्यौरा देते हुए। जैसा कि जॉन शिले ने कहा है: 'इतिहास अतीत की राजनीति है और राजनीति वर्तमान का इतिहास है।' दीर्घकालीन गतिशीलता ने इतिहासकारों में कोई दिलचस्पी नहीं पैदा की। ऐसी हालत में इतिहास के अध्ययन का क्या मतलब है जब केवल यही बताया जा रहा हो कि किस प्रकार एक शासक ने दूसरे शासक को हटाकर सत्ता अपने हाथ में ले ली और एक युद्ध ने उसके द्वारा शासित क्षेत्र के एक हिस्से से उसे वंचित कर दिया? यह 'घटना' समुद्र में झाग की तरह है जो एक दम क्षणभंगुर है और इसलिए इसका कोई महत्त्व नहीं है। समुद्र की असली 'उथल-पुथल' सतह के नीचे चल रही है और अदृश्य है। जिसे नंगी आँखों से देखना संभव नहीं है। मानव विज्ञानियों और भूगोल के विद्वानों ने महसूस किया कि इतिहासकारों ने इन तथ्यों की अवहेलना की।

एक दूसरा सवाल ऐतिहासिक स्रोतों के इस्तेमाल से संबंधित है। इतिहासकारों की निगाह में अभिलेखागारों की एक पवित्रता है और इसे लगभग एक नैतिक आधार दिया जा चुका है। उनके द्वारा जो भी वक्तव्य दिए जाते हैं उनके अन्य अनुभवनिष्ठ साक्ष्यों के लिए अभिलेखागारों की धूल भरी फाइलों को देखना होता है जिसमें वे मौजूद होते हैं। अगर उन फाइलों में ये बातें नहीं मिली तो इन्हें 'तथ्य नहीं माना जाता क्योंकि इतिहासकारों के लिए ये फाइलें अत्यंत पवित्र होती हैं। यहाँ तक कि 1970 के दशक तक में इतिहासकार जैक लिओनार्द ने इतिहास से जुड़ी समस्याओं में दार्शनिक मिशेल फूको के हस्तक्षेप की वैधता को चुनौती देते हुए धमकी भरे अंदाज में सवाल किया कि क्या उन्होंने कभी अभिलेखागार की फाइलों की धूल से अपने हाथ गंदे किए हैं ('दि हिस्टोरियन एंड दि फिलॉस्फर') और जवाब में फूको ने अभिलेखागार की धूल की पवित्रता का मजाक उड़ाया है ('दि डस्ट एण्ड दि क्लाउड')। दस्तावेजी प्रमाण के आधार पर अगर कोई चीज दिखायी दी तो इतिहासकार ने यह स्वीकार कर लिया कि वही सच है। उसने कभी इस बात की परवाह नहीं कि वह दस्तावेज अपने आप में एक सांस्कृतिक निर्मिति है जो बेहद आत्मपरक निर्मिति हो सकती है। वस्तुगत सच्चाई मानवीय व्यवहारों, उनकी आदतों, मूल्य प्रणालियों और जीवन में उपस्थित स्थितियों के प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं के अंदर कभी छुपी होती है। ये सारी चीजें परिवार, समुदाय अथवा पड़ोस में अवचेतन के

स्तर पर बनती रहती हैं। इनमें से किसी से संबंधित लिखित दस्तावेज नहीं मिलेंगे और न किसी को आप किसी घटना विशेष का परिणाम कह सकते हैं। ये चीजें बहुत स्पष्ट भी नहीं होती है। 'घंटना' के प्रति अपने पूर्वाग्रह के कारण इतिहासकारों की निगाह से ये बारीकियाँ छूट जाती हैं और वह तात्कालिक तथा प्रगट रूप से दिखायी देने वाली घटनाओं में उलझा रह जाता है। 'समाज विज्ञान' कि एक ऐसी दृष्टि अब उभर कर सामने आ रही थी जो इतिहास के दायरे से अब तक बाहर थी।

14.3 *अनाल* की स्थापना

इतिहास पर हुए इस प्रहार ने दो मित्रों को, जो युवा इतिहासकार थे और फ्रांस के विद्वत्त जगत स्ट्रासवर्ग में कहीं एक कोने में पड़े थे, काफी बेचैन कर दिया। मार्क ब्लाक और लूसियाँ फेबव्र ने जिस तरह का इतिहास पढ़ा था और जिस तरह का इतिहास पढ़ाने के लिए उन्हें मजबूर किया जाता था इससे वे बहुत अप्रसन्न थे। अपेक्षाकृत नए-नए विषयों से जो अंतर्दृष्टि मिल सकती थी उनके प्रति वे काफी संवेदनशील थे। वे इस बात से असंतुप्ट थे कि जो विषय एक दूसरे के इतने घनिष्ठ हो सकते हैं, वे एक दूसरे के शत्रु बने हुए हैं और उन्होंने अपने चारों ओर एक अलंघ्य दीवार खड़ी कर ली है। जनवरी 1929 में उन्होंने एक नयी पत्रिका 'अनाल दिस्तुआर इकोनोमिक ए सोसिआल' का प्रकाशन शुरू किया। प्रारंभ में इस पत्रिका ने समकालीन सरोकारों से जुड़े मुद्दों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया ताकि पैदा हो रहे संकट की जड़ों तक पहुँचा जा सके और उन्हें समझा जा सके। समय बीतने के साथ इसने बड़ी तेजी से मध्यकालीन और प्रारंभिक आधुनिक इतिहास को जो मार्क ब्लाक और लुसियाँ फेबव्र के विषय थे, पर अपना ध्यान केन्द्रित किया।

पत्रिका के प्रवेशांक में लिखे गये संक्षिप्त संपादकीय में इन दोनों संपादकों ने अत्यंत प्रभावकारी ढंग से इसकी ज़रूरत पर जोर दिया और बताया कि भले ही कोई व्यक्ति अपने खुद के विषय के साथ गंभीरता से क्यों न जुड़ा हो पर अंतर्विषयक अनुसंधान के क्या फायदे हैं। 'इसमें कोई शक नहीं कि अगर कोई व्यक्ति अपनी खुद की विशेषज्ञता में डूबा हुआ बड़ी मेहनत के साथ अपने हिस्से के खेत की जुताई में लगा हो और इसके साथ ही अपने पड़ोसी को समझने का भी प्रयास करे, तो यह अच्छा ही होगा। लेकिन एक दूसरे से अलग करने वाली दीवारें प्राय: इतनी ऊंची उठा दी जाती हैं कि हम एक दूसरे को देख भी नहीं पाते। और फिर भी तथ्यों की पद्धति और व्याख्या, संस्कृति की अंतर्दृष्टि और सहज अनुभूति की दिशा में जो प्रगति संभव है वह इन विभिन्न समूहों के बीच बौद्धिक अंत:क्रिया के जरिए ही कुछ नए बीजारोपण कर सकती है। इस पर ही आर्थिक इतिहास का भविष्य निर्भर करता है और तथ्यों की सही जानकारी भी इस पर ही निर्भर करती है जो आने वाले कल में 'समग्र इतिहास' का रूप ले सकेगी।'

'समग्र इतिहास' वह चीज थी जिसे आंशिक इतिहास के स्थान पर ***अनाल*** तैयार करना चाहता था। यही 'सच्चा इतिहास' भी होगा। यहाँ सच्चे इतिहास को झूठे इतिहास के मुकाबले नहीं खड़ा किया जा रहा था बल्कि आंशिक इतिहास के बरक्स इतिहास के एक स्वरूप के तौर पर प्रस्तुत किया जा रहा था। 'समग्र इतिहास' और 'सच्चा इतिहास' इस विषय के क्षेत्र को विस्तार देते थे। अतीत का कोई भी हिस्सा और कोई भी पहलू इसके अध्ययन क्षेत्र से बाहर नहीं था। इस प्रकार अन्य विषयों की चुनौती का मुकाबला करने तथा इन विषयों की अंतर्दृष्टि को अपने में समाहित करने की गुंजाइश पैदा की गयी।

फलस्वरूप इतिहासकारों के अन्वेषण के लिए नए-नए विषयों के द्वार खुले। खुद मार्क ब्लाक ने दो खण्डों में लिखी अपनी पुस्तक *दि फ्यूडल सोसाइटी* (1936) में सामंतवाद के अध्ययन के दौरान सभी पहलुओं पर ध्यान देकर अध्ययन का समग्र और विशाल ढांचा खड़ा किया। उन्होंने फ्रांस के ग्रामीण क्षेत्रों में काफी समय बिताया ताकि उस समाज के अवशेषों से खुद को

संवेदनात्मक रूप से अनुभव करा सकें। यह काम उन्होंने वहाँ के वीरान पड़े खेतों तथा सांस्कृतिक मूल्यों के स्तर पर भी किया। दूसरी तरफ लूसीयाँ फेबव्र भावनाओं और विश्वासों के क्षेत्र में ज़्यादा से ज़्यादा अन्वेषण करने के लिए उत्सुक दिखायी दिए। अपनी पुस्तक *दि प्राबलम ऑफ अनविलीफ इन दि सिक्सटिंथ सेंचुरी : दि रेलीजन ऑफ रेबेला* (1942) में उन्होंने फ्रांसुआ रेबेला नामक एक केन्द्रिय चरित्र को लिया जो ईसाई धर्म का कटु आलोचक था और जिसमें उसकी आस्था नहीं थी। यह चरित्र 16वीं शताब्दी के समाज के संदर्भ में इसके विविध पहलुओं में धर्म का अध्ययन करने के लिए फेबव्र का प्रस्थान बिन्दु था। नए-नए क्षेत्रों में इतिहास के सरोकारों के विस्तार के मामले में उनके बहुप्रशंसित लेख 'सेंसिबिलिटी एंड हिस्ट्री: हाऊ टू रिकांस्टीट्यूट दि इमोशनल लाइफ ऑफ दि पास्ट' एक उल्लेखनीय काम था। इसमें कोई शक नहीं कि इसकी शुरुआत इस अवधारणा से होती है जिसमें माना गया है कि 'संवेदना और इतिहास एक नया विषय है और मैंने ऐसी कोई पुस्तक नहीं देखी जिसमें इस विषय पर विस्तार से लिखा गया हो। मैंने यह भी नहीं देखा कि जिन अनेक समस्याओं पर इसमें चर्चा की गयी है उनमें से किसी पर भी और कहीं विचार किया गया हो। और फिर भी कृपया उस असहाय इतिहासकार को क्षमा करें जो कलाकार की चीख को स्वर दे रहा हो और फिर भी कह रहा हो कि कितना शानदार विषय उसने चुना।' एक अर्थ में इस लेख ने जिस धारा की शुरुआत की उसे हम बड़े पैमाने पर *अनाल* के इतिहासकारों में आगे चलकर देख सकते हैं और इसका सरोकार मानसिकताओं के इतिहास से था।

इस प्रकार अब इतिहास धीरे-धीरे समाज विज्ञान का हिस्सा बनता जा रहा था। 1903 में फ्रांसुआ सीमियाँ ने समाज विज्ञान को अकेली एक इकाई के रूप में देखा था और इतिहास को इससे अलग माना था हालाँकि अपने लेख 'मेथड हिस्टोरिक ए साइंस सोशेल' में उन्होंने वह रास्ता भी दिखाया था जिससे होते हुए समाज विज्ञान के क्षेत्र में इतिहास प्रवेश कर सकता था:

> 'यदि मानवीय तथ्यों के अध्ययन की यह चाह है कि वह खुद को एक प्रत्यक्षवादी विज्ञान के रूप में स्थापित करे तो इसे खुद को तथ्यों तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए और बार-बार होने वाली घटनाओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि दुर्घटनावश घटित किसी स्थिति के बजाय नियमित घटित होने वाली स्थितियों पर निगाह डालें, व्यक्तिगत की बजाय सामाजिक पर ध्यान रखें।'

यह इतिहासकारों के लिए इस बात का निमंत्रण था कि वे अर्थशास्त्र, समाज विज्ञान, मानव विज्ञान तथा भूगोल का अध्ययन करें ताकि विशिष्ट की बजाय सामान्य में अंतर्निहित सामाजिक गतिशीलता और परिवर्तन के उस समय की अवधारणा के अनुसार जो 'नियम' थे उन पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकें। इस लेख का फर्नान्द ब्रोदेल ने 1960 में 'अनाल' में पुनर्प्रकाशन किया था 'ताकि युवा इतिहासकारों को इसका लाभ मिल सके और पिछले 50 वर्षों में जो यात्रा पूरी हुई उसका वे अनुमान लगा सकें और इतिहास तथा समाज विज्ञान के बीच बेहतर ढंग से संवाद स्थापित कर सकें। जो हमारी इस पत्रिका का मुख्य लक्ष्य है।'

दीर्घकालिक नियमितताओं के अध्ययन के निमंत्रण पर जो पहली प्रतिक्रिया देखने को मिली वह अर्थशास्त्र और इतिहास के बीच एक विलय के रूप में थी। साथ ही एक स्वायत्त विषय के रूप में आर्थिक इतिहास को भी जन्म लेते हुए देखा गया। अरनेस्ट लेब्रास की कृति *दि क्राइसिस ऑफ दि फ्रेंच इकानॉमी एट दि इंड ऑफ दि एनसेंट रेजिम एंड दि बिगनिंग ऑफ दि रिवल्यूशन (1944)* तथा फर्नान्द ब्रोदेल की कृति *दि मेडिटेरेनियन एंड दि मेडिटेरिनियन वर्ल्ड इन दि एज आफ फिलिप 2* (1949) दोनों में इतिहास की ऐसी दीर्घकालिक प्रवृतियों को ढूँढने का प्रयास किया गया जो आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन को समझने में और एक हद तक उसके भविष्य का अनुमान लगाने में मदद कर सके। लेब्रास का निष्कर्ष था

कि औद्योगिक अर्थतंत्र के विपरीत, जहाँ ज़रूरत से ज़्यादा उत्पादन आर्थिक संकट को जन्म देता हो, कृषि के क्षेत्र में अनाज का ज़रूरत से कम उत्पादन संकट की ऐसी स्थिति पैदा करता है जिसका प्रभाव अर्थतंत्र और समाज के अन्य क्षेत्रों पर पड़ता है। दूसरी तरफ ब्रोदेल ने भूमध्य सागर क्षेत्र के आसपास की पारिस्थितिकी में होने वाले बेहद धीमे परिवर्तनों का तथा अंतर्महाद्वीपीय व्यापार पर पड़ने वाले दूरगामी प्रभाव का अध्ययन किया। इन विषयों में ब्रोदेल की दिलचस्पी काफी सीमित थी हालाँकि अपनी बाद की कृतियों के जरिए इन विषयों की सीमाओं का उन्होंने निरंतर विस्तार किया। 'सीविलाइजेशन एंड केपिटलिज्म' शीर्षक के तहत तीन खण्डों के उनके अध्ययन तथा 'दि स्ट्रक्चर्स ऑफ एवरीडे लाइफ, दि व्हील्स ऑफ कॉमर्स' और 'दि परस्पेक्टीव्स ऑफ दि वर्ल्ड' – इन सभी पुस्तकों में उनके पुराने सरोकारों के साथ-साथ नए सरोकारों मसलन आहार का इतिहास जैसी चीजों का पता चलता है। दीर्घकालीन इतिहास की एक शाखा के रूप में उन्होंने जलवायु के इतिहास को स्थापित किया जिसका दायरा अनेक शताब्दियों तक फैला हुआ है। इमेनुएल लेराय लादूरे 1960 के दशक के उन प्रारंभिक इतिहासकारों में से जिन्होंने यूरोपीय इतिहास-लेखन में इस नए विषय की शुरुआत की।

यहाँ एक नए क्षेत्र की तलाश की जा रही थी। इस क्षेत्र का सरोकार अर्थशास्त्र के दीर्घकालीन इतिहास और समाज पर पड़ने वाले इसके विविध प्रभावों से था। जो नयी समस्याएँ पैदा हुई थीं उनकी यह मांग थी कि इतिहास के बारे में नयी दृष्टि विकसित की जाय और अन्वेषण के नए स्रोतों और नए तरीकों को ढूंढा जाय। आर्थिक परिवर्तनों को सामान्य अनुभवों पर नहीं छोड़ा जा सकता था : उन्हें मात्रात्मक आँकड़ों पर आधारित होना चाहिए। यह एक नयी अवधारणा थी जिसे 1960 के दशक में कंप्यूटरों के आगमन से और भी मजबूती मिली। स्रोतों के संबंध में भी फुस्तैल दा कुलान के इस विचार पर कि 'इतिहास का लेखन विभिन्न पाठों के इस्तेमाल के जरिए हुआ है।' लुसियाँ फेबव्र ने एक भिन्न संदर्भ में प्रतिक्रिया व्यक्त की थी कि 'निश्चय ही पाठों के जरिए लेकिन हर तरह के पाठों के जरिए... और केवल पाठों के जरिए ही नहीं'। जैसा कि हमने ऊपर बताया है सामंती व्यवस्था की कार्य पद्धति को गहरायी से समझने के लिए और किसी मानव विज्ञानी की तरह एक अंतर्दृष्टि पाने के लिए मार्क ब्लाक फ्रांस के ग्रामीण क्षेत्रों में रहे।

फर्नान्द ब्रोदेल ने 'घटनाओं' के प्रति इतिहासकारों के पूर्वाग्रह की आलोचना को गंभीरतापूर्वक लिया था और इस पर अपनी राय व्यक्त की थी। उनके खुद के अध्ययनों ने तात्कालिकता से उन्हें काफी दूर पहुँचा दिया था इसलिए उनके अंदर यह क्षमता पैदा हो गयी थी कि विभिन्न समस्यामूलक संदर्भों में ऐतिहासिक समय की विभिन्न लयबद्धता की वह कल्पना कर सकें। अपने एक महत्त्वपूर्ण लेख 'हिस्ट्री एंड दि सोशल सांइसेज : दि लांगे दूरे' (1958), में ब्रोदेल ने तीन बातों पर जोर दिया : दीर्घकालिकता या संरचना जो इतनी धीमी गति से आगे बढ़ती है जिस प्रकार पारिस्थितिकी और सामाजिक तथा आर्थिक प्रणाली मसलन पूँजीवाद का इतिहास-लेखन बढ़ता हो। दूसरी चीज का संबंध संयोगों से था जो मध्यम स्तर के परिवर्तन को मापने की पद्धति प्रदान करता है। और तीसरी बात का सरोकार घटनाओं से है जो तात्कालिक तौर पर होती हैं।

14.4 इतिहास-लेखन की नयी प्रवृत्तियाँ

इन नए प्रयासों के नतीजे के रूप में तीन बातें सामने आयीं —मानसिकताओं का इतिहास, समाज के हाशिए पर स्थित समूहों का इतिहास और तुलनात्मक इतिहास।

लुसियाँ फेबव्र ने अपने लेख 'सेंसिबीलिटी एंड हिस्ट्री,' में पहले ही मानसिकताओं के क्षेत्र पर जोर दिया है। मार्क ब्लाक ने भी 1924 में अपनी पुस्तक *लॉ रायस थामेतरजी* में राज परिवारों

का जिक्र करते हुए राजाओं महाराजाओं की चमत्कारिक शक्तियों का वर्णन किया है। इस पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद *दि रायल टच* (1973) नाम से प्रकाशित हुआ।

प्रारंभिक अन्वेषणों ने पर्याप्त रुचि पैदा की और मनोवृत्तियों के अध्ययनों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। माइकेल वोवेल ने मात्रात्मक पद्धति का चर्च के दस्तावेज़ों में सुरक्षित रखे वसीयतों की छानबीन तक विस्तार किया ताकि मध्यकालीन और शुरुआती आधुनिक फ्रांस में मृत्यु के प्रति परिवर्तित होती मनोवृत्तियों को जान सकें। जॉक ला गॉफ ने अपने अत्यंत प्रतिष्ठित लेख 'मर्चेंट्स टाइम ऐण्ड चर्चेज टाइम इन दि मिडिल एजेज' में यह पता करने की कोशिश की कि मध्यकालीन युग में समय के प्रति लोगों की प्रवृत्तियाँ किस प्रकार बदल रही थीं। चर्च का समय अंतरिक्षीय (कॉसमिक), अपरिमेय था ब्रह्मांड के निर्माण से फैसले के दिन तक जिसका विस्तार था। दूसरी तरफ किसी व्यापारी के लेन देन के लिए ऐसे समय की ज़रूरत थी जो निश्चित हो, जिसे दिन के हिसाब से मापा जा सके और जो एक ऐसी वस्तु हो जिसे व्यापारिक लेन देन के जरिए बेचा जा सके। यूरोप में मध्यकाल में इन दोनों के बीच का संघर्ष एक प्रमुख सामाजिक संघर्ष था। अनालवादी इतिहास-लेखन की परंपरा में ला गॉफ एक महान व्यक्तित्व थे जिन्होंने इस परंपरा की सीमाओं का मनोवृत्तियों के इतिहास के क्षेत्र तक विस्तार किया।

यही स्थिति 1996 में अपनी मृत्यु तक जार्ज ड्यूबी की थी। मध्यकालीन यूरोप के संदर्भ में भूमि और श्रम के इतिहास से शुरू कर *(रूरल इकोनॉमी एण्ड कंट्रीलाइफ इन दि मेडिवल वेस्ट)* ड्यूबी ने शादी व्याह, परिवार और महिलाएँ, गिरिजाघर और मध्यकालीन कल्पनाओं खासतौर पर मध्यकालीन समाज को संचालित करने वाले मूल्यों के अध्ययन पर ध्यान दिया।

फिलिप एरीज खुद को 'नौसिखिया' इतिहासकार कहना पसंद करते थे क्योंकि जिस समय वह बाकायदा एक इतिहासकार थे उस समय भी इस पेशे से बाहर थे। वह इतिहास में कुछ प्रमुख नये विषयों के प्रवर्तक थे। उन्होंने मृत्यु की भावना तथा बच्चों के प्रति रुख को ऐतिहासक छानबीन का विषय माना। उन्होंने लैंगिकता के मुद्दों, घरेलू और परस्पर आंतरिक संबंधों पर जोर देते हुए परिवार के इतिहास को केंद्र में ला दिया। उन्होंने अपनी पुस्तक *सेंचुरीज ऑफ चाइल्डहुड* (1962) में बचपन और इसकी पृथक् ज़रूरतों की मान्यता के इतिहास की खोज की क्योंकि अब तक बच्चों को महज वयस्क के एक छोटे रूप के तौर पर देखा जाता था। अपनी दूसरी पुस्तक *दि आवर ऑफ अवर डेथ* (1981) में मृत्यु के बारे में सोच पर विचार किया। सामाजिक इतिहास की पुनर्व्याख्या में ये महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप थे। 1970 और 1980 के दशक में पीटर लैसले और जैक गूडी के नेतृत्व में परिवार के इतिहास पर काम कर रहे विख्यात कैंब्रिज ग्रुप ने इन खोजों का अनुसरण किया और कुछ जबर्दस्त अभिनवकारी शोधकार्यों को प्रकाशित किया, मसलन पीटर लैसले और रिचर्ड वाल्व द्वारा संपादित *हाउस होल्ड एण्ड फेमिली इन पास्ट टाइम (1972);* पीटर लैसले, *फेमिली लाइफ एण्ड इलिसिट लव इन अर्लियर जनरेशन्स* (1977); रिचर्डवाल, जे रोबिन और पी लैसले द्वारा संपादित *फेमिली फॉर्मस इन हिस्टोरिक यूरोप,* (1982); जैक गुडी, *दि डेवलपमेंट आफ दि फेमिली एण्ड मैरेज इन यूरोप,* (1983)।

हाल के तीन मिले जुले प्रयासों ने मनोवृत्तियों के इतिहास के कार्य को आगे बढ़ाया; फिलिप एरिस और जार्ज ड्यूबी द्वारा संपादित *ए हिस्ट्री ऑफ प्राइवेट लाइफ* (पाँच खंडों में), जार्ज ड्यूबी और मिशेल पेरो द्वारा संपादित *हिस्ट्री ऑफ वीमेन* (चार खंडों में), और गिवानी लेवी तथा ज्याँ क्लॉद स्मिथ द्वारा संपादित *ए हिस्ट्री आफ यंग पीपुल* (दो खंडों में)। इन सभी कृतियों के एक बड़े हिस्से में मनोवृत्तियों पर विचार किया गया है।

जी वीगारेलो ने अपनी उल्लेखनीय पुस्तक *दि कांसेप्ट्स ऑफ क्लीनलीनेस* (कैंब्रिज, 1988) में मनोवृत्तियों के विषय पर आगे काम किया जबकि जाँ क्लाद स्मिथ ने चेष्टाओं के विषय को केंद्र में रखते हुए अपनी पत्रिका *हिस्ट्री एण्ड एन्थ्रोपोलाजी* का विशेषांक संपादित किया।

समाज के हाशिए पर जो समूह पड़े थे उनके प्रति काफी समय से इतिहासकारों का एक आकर्षण था लेकिन 1960 और 1970 के दशक तक यह धारणा नहीं बन सकी थी कि हाशिए पर होना क्या है और मुख्यधारा के समाज से इसका संबंध क्या है। हाशिए पर पड़े लोग केवल वही नहीं थे जो गरीब और साधनहीन थे बल्कि वे भी थे जो न केवल मुख्यधारा के समाज की क्षेत्रीय सीमाओं (गांवों में, झोपड़ों में या जंगलों और पहाड़ों आदि) में बसते थे बल्कि वे भी थे जिनकी जिंदगी के तौर तरीके मजबूरी में या अपनी पसंद से मुख्यधारा के लोगों के तौर तरीकों से भिन्न थे। मिसाल के तौर पर भिखमंगे, पागल, साधु, चोर और डकैत। दार्शनिक मिशेल फूको को इस बात का श्रेय जाता है जिन्होंने इस समस्याग्रस्त श्रेणी के लिए खासतौर से अपनी पुस्तकों *डिसिप्लिन एण्ड पनिश* और *मैडनेस एण्ड सिविलाइजेशन* में कुछ मानदंड निर्धारित किये। उन्होंने कहा कि हाशिए पर रहने वालों का अध्ययन इस लिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह मुख्यधारा का 'अन्य' पहलू है। खुद मुख्यधारा की परिरेखा का निर्धारण करने के लिए इनका अध्ययन एक प्रस्थान बिंदु होगा। फूको ने सामाजिक परिघटना के अध्ययन में सत्ता संबंध की मूल अवधारणा की शुरुआत की। सीमांतता की निर्मिति इस अर्थ में सत्ता संबंध की एक सुनिश्चित अभिव्यक्ति थी कि मुख्यधारा के अभिजात्य मूल्यों ने सीमांतता की धारणा का निर्धारण किया था। जो कोई भी उन मूल्यों के अनुसार आचरण नहीं करता था उसे एक कैदी या पागल या किसी भी रूप में बहिष्कृत कर हाशिए पर डाल दिया जाता था। उनके लिए मनोचिकित्सा का जन्म सामाजिक सत्ता संबंध के रूप में सीमांतता की निर्मिति की मुख्य अभिव्यक्ति थी।

इस परिप्रेक्ष्य को स्थापित करते समय फूको इतिहास विषय की इस बुनियादी अवधारणा पर सवालिया निशान लगा रहे थे कि अभिलेखागारों से ढूंढ कर निकाले गये 'तथ्यों' के साथ अकाट्य वस्तुपरकता जुड़ी हुई है। फूको के विचार से 'तथ्यों' का सांस्कृतिक तौर पर निर्माण किया जाता है: वे एक सत्ता संबंध को अभिव्यक्ति देते हैं। इस प्रकार इतिहास की वस्तुपरकता एक ही बार में सापेक्षवादी हो जाती है। यह अनालवादियों के लिए भी उतनी ही गंभीर चुनौती थी जितनी प्रत्यक्षवादी इतिहास के लिए। कुछ अनालवादियों ने सीमांतता के अपने अध्ययन में फूको की इस अंतर्दृष्टि को शामिल किया। पोलिश इतिहासकार ब्रोनिस्लाव जेरेमेक की महत्त्वपूर्ण कृति 'दि मार्जिन्स आफ सोसाइटी इन लेट मेडिवल पेरिस' फूको के प्रभाव में लिखी गयी थी। इसका मूल पोलिश भाषा में प्रकाशन 1971 में, फ्रेंच में 1976 में और अंग्रेजी में 1987 में हुआ।

प्रारंभ से ही अनालवादियों की दृष्टि तुलनात्मक इतिहास के ढाँचे के प्रति अस्पष्ट थी। तुलनात्मक इतिहास अनालवादी इतिहास लेखकों की खोज नहीं था जैसा कि मार्क ब्लॉक ने अपने प्रसिद्ध लेख 'ए कंट्रीब्यूशन टुवर्डस ए कंपरेटिव हिस्ट्री ऑफ यूरोपियन सोसाइटीज' (1928) में जोर देकर कहा था। उनके विचार से तुलनात्मक पद्धति दो परिघटनाओं या स्थितियों के बीच प्रत्यक्ष समानताओं की तह में छुपी असमानताओं पर टिकी थी। इन दोनों के बीच की तुलना प्रत्येक की विशिष्टताओं को उजागर करती है और इसी लिए एक दूसरे की रूपरेखा को विकसित करने में अत्यंत उपयोगी उपकरण का काम करती है। तो भी सामंतवाद अथवा पूँजीवाद जैसी परिघटना के अध्ययन से उतनी ही तुलनात्मकता का पता चलता है जिनकी जानकारी उनकी अवधारणा में है और इसी के फलस्वरूप उनकी व्यापक और विविध संरचनाओं का अध्ययन संभव है।

14.5 *अनालवादी* धारा का योगदान

यह मान लेना एक भूल होगी कि इतिहास-लेखन की अनालवादी धारा ने अपनी स्थापना के बाद सात दशकों में कोई सीधा सपाट रास्ता अख्तियार किया है और किसी एक विशिष्टता पर केंद्रित रहा है और साथ ही इसमें न तो कोई महत्त्वपूर्ण उतार चढ़ाव आये और न इसे आंतरिक संघर्षों तथा अंतर्विरोधों का सामना करना पड़ा। इसमें कोई शक नहीं कि इसके जीवनकाल में पत्रिका के उपशीर्षकों में बार बार बदलाव से पता चलता है कि इसे कितने तनावों से गुजरना पड़ा और यह कितनी गतिशील रही। 'अनाल' शब्द ने भले ही इस पत्रिका की एक स्थायी पहचान बनायी हो लेकिन इसके मूल उपशीर्षक 'हिस्तोरे इकोनॉमिके ए सोशेल' को बदलकर 'इकोनॉमीज, सोसाइतीज, सिविलाइजेशन्स' और आगे चलकर 'हिस्तोरे ए साइंसेज सोशेल' कर दिया गया।

कुछ महत्त्वपूर्ण तनाव *अनाल* की अपनी परियोजनाओं से ही विकसित हुए थे। महत्त्वपूर्ण अर्थों में देखें तो अनालवादी इतिहास-लेखन एक तरफ तो प्रत्यक्षवाद और मार्क्सवाद की विरासत का विरोधी था और दूसरी तरफ इसी को उसने विरासत के रूप में हासिल किया था। प्रत्यक्षवाद तथा मार्क्सवाद ने इतिहास के वस्तुगत तथ्य और इतिहासकारों द्वारा इसके आत्मगत अनुभव के बीच एक विरोधाभास देखा। प्रत्यक्षवाद ने वैज्ञानिक तर्क पद्धति के आधार पर इस वस्तुगत सत्य को उजागर किया कि वस्तुगत सत्य ऐतिहासिक दस्तावेजों में छुपा हुआ है। अपने तर्क का इस्तेमाल करते हुए इतिहासकार टुकड़े-टुकड़े में उसे उद्घाटित करेगा और इससे प्रेक्षक यानी इतिहासकार और जिसे देखा गया यानी वस्तुगत सत्य के बीच की खाई को पाटेगा। वर्ग संघर्ष के प्रिज़्म के जरिए मार्क्सवाद इसी लक्ष्य तक पहुँचा। सभी इतिहासों की इस प्रकार व्याख्या की जा सकती है।

अनालवादी इतिहास लेखकों ने भी यह सपना देखा था कि वे किसी दिन 'समग्र इतिहास' का लक्ष्य प्राप्त कर लेंगे जो 'वास्तविक इतिहास' होगा। लेकिन उनके बीच स्पष्ट अंतर यह था कि अगर प्रत्यक्षवाद की सारी ऐतिहासक व्याख्याएँ वैज्ञानिक तर्कों पर और मार्क्सवाद की वर्ग संघर्ष पर टिकी थी तो इतिहास-लेखन की अनालवादी धारा के अनुयायियों के पास इतिहास संबंधी व्याख्या के लिए इस तरह का कोई स्थायी ढांचा नहीं था। कहने का तात्पर्य यह है कि इतिहास से संबंधित सभी घटनाएँ या परिघटनाएँ या आंदोलन अंतिम तौर पर या तो आर्थिक आधार या राजनीतिक या मनोवैज्ञानिक अथवा इस तरह के किसी अन्य वस्तुओं पर नहीं लाए जा सकते। देखा जाय तो यह प्रत्येक परिघटना, घटना या आंदोलन की गति को कार्य-कारण सिद्धांत के आधार पर इसका अध्ययन करना चाहेंगे। लेकिन किसी-न-किसी स्तर पर एक समग्र और वास्तविक इतिहास के निर्माण की क्षमता वस्तुगत यथार्थ की प्रत्यक्षवादी और मार्क्सवादी अवधारणा के बगैर संभव नहीं है।

निश्चय ही, अनालवादियों के अंदर सोद्देश्यता के प्रति घोषित विद्वेषभाव था, फिर भी इन्होंने ऐतिहासिक व्याख्या के प्रति अव्यक्त रूप से ही सही, आश्चर्यजनक ढंग से दीर्घकालीन श्रेणीबद्धता की खोज की। बेशक संवेदनशीलता और अविश्वास के इतिहास में लूसियाँ फेबव्र के अन्वेषणों को छोड़ दें तो इस ढंग के प्रारंभिक कार्यों को अधिकांशत: सामाजिक-आर्थिक इतिहास के क्षेत्र में देखा जा सकता है। एक बार अगर 'नींव' पड़ गयी तो इसके फलस्वरूप मनोवृत्तियों के इतिहास की 'अधिरचना' शुरू हो जाती है। इस अंतर्निहित अधिरचना निर्माण के बारे में *अनालवादी* इतिहास-लेखन के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर जार्ज ड्यूबी ने बहुत जोर दे कर कहा कि वे मध्यकालीन यूरोप की शादियों, महिलाओं, परिवार इत्यादि के अध्ययन की ओर इसलिए मुखातिब हुए क्योंकि उन्होंने पहले ही उस काल की अर्थव्यवस्था, उत्पादन प्रक्रिया, वितरण आदि पर अपनी पकड़ बना ली थी।

अनालवादी इतिहास-लेखन उस समस्या के प्रति भी दुविधा में रहा है जो उसने खुद ही उठाया था और जिसका संबंध कालक्रम के साथ इतिहास की संबद्धता से है। यदि इसने सही इतिहास की अपनी तलाश में लौकिक सीमाओं से परे जाने का इरादा किया तो इसमें समय और कालक्रम की अवधारणा पर पुनर्विचार निहित था। निश्चय ही इतिहास का सरोकार समय से है पर यह न तो कालक्रम द्वारा संचालित होता है और न इसे संचालित होना चाहिए। निश्चय ही अगर कालक्रम कृत्रिम है तो समय भी अस्थिर है। इतिहास विषयक समय की अलग-अलग लयों की अवधारणा को स्वरूप देने का फर्नान्द ब्रोदेल का काम और जॉक ला गॉफ द्वारा समय को यह प्रदर्शित करना कि वह सांस्कृतिक तौर पर निर्मित है इसलिए पूर्ण और नियत की बजाय सापेक्ष तथा गतिशील है, ऐसे उल्लेखनीय काम थे जिन्होंने समय तथा कालक्रम के साथ इतिहास के दोहरे संबंध को पुनर्परिभाषित करने में बहुत बड़ा योगदान किया। 'संपूर्ण इतिहास' या 'अपनी समग्रता में इतिहास' की अवधारणा में प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक के बीच कालक्रम के अनुसार सख्त विभाजन की पवित्रता संदिग्ध हो जाती है क्योंकि ऐसे अनेक विषय हैं जिन्हें इस वर्गीकरण में रखना मुश्किल है।

मनोवृत्तियों, सामाजिक मूल्यों या पारिवारिक संरचनाओं में परिवर्तन की लय अपने आसपास खिंची किसी भी लौकिक सीमाओं को पार कर जाती है। इन विषयों की खोजबीन में यह धारणा छिपी थी कि इतिहासकारों को साक्ष्यों के और, खास तौर से अधिलेखागारों से प्राप्त साक्ष्यों के, आतंक से ऊपर उठने की और काफी हद तक मार्क ब्लाक की तरह कल्पना तथा नृतत्वशास्त्र संबंधी अंतर्दृष्टि पर निर्भर होने की ज़रूरत है। बावजूद इसके, इस शैली के अधिकांश इतिहासकारों ने कालक्रम की उन्हीं सीमाओं का सख्ती से पालन किया है जो उन साक्ष्यों द्वारा तैयार की गयी थीं। इस तनाव की अभिव्यक्ति फर्नान्द ब्रोदेल की महत्त्वपूर्ण पुस्तक *मेडिटेरीनियन ऐण्ड दि मेडिटेरीनियन वर्ल्ड इन दि एज ऑफ फिलिप 2* में जितने अच्छे ढंग से हुई है वह अन्यत्र दुर्लभ है। एक तरफ तो अपने दो खण्डों में ब्रोदेल ने इतिहास के व्यापक फलक को उद्घाटित करने का प्रयास किया है और दूसरी तरफ 'फिलिप दो के युग में' के अंतर्गत लौकिक सीमाओं को दिखाने का प्रयास किया है। साक्ष्य के आधार पर चलने का आदेश उनके लिए भी उतना ही आतंककारी है जितना 19वीं शताब्दी में उनके पूर्वजों के लिए था जिसने जबरन उन्हें कालक्रम के पट्टे से बांध दिया और उनकी आकांक्षाओं पर उल्लेखनीय रूप से बंधन लगा दिया।

तो भी जिसे हम अनालवादी इतिहास-लेखन कहते हैं उसके तहत जो अन्वेषण किए गए उन्होंने इतिहासकारों के शिल्प के लिए ऐसे रास्ते खोल दिए जो विभिन्न विषयों तक जाते हैं। इसके सरोकारों के मूल में अब मनुष्य हैं जिनके जीवन में है तनाव, संघर्ष, दुविधाएँ, अनिर्णय, उथल-पुथल और प्रतिस्पर्धा से भरी हुई भावनाएँ, विचार, अनुभव और मनोवृत्तियाँ। जीवन की संरचना का अध्ययन मानव समुदाय का अध्ययन है न कि अध्ययन के विषय में कोई आत्म केन्द्रित व्यक्तित्वहीन परिघटना जिसमें मनुष्य को पहले से तय की गयी भूमिका मात्र निभानी हो। इसके क्षेत्र के विस्तार और इसके निरंतर विकसित हो रहे अन्वेषणों की जटिलताओं को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वह किसी भी उद्देश्यपरक परियोजना को पृष्ठभूमि में डाल देगा भले ही *अनालवादियों* ने जानबूझकर इसके साथ मुठभेड़ किया हो या न किया हो।

14.6 सारांश

जैसा कि हमने उपरोक्त अध्ययन में देखा अनाल स्कूल की स्थापना 20वीं शताब्दी में इतिहास-लेखन की परंपरा में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। मार्क ब्लाक, लुसियाँ फेबव्र, फर्नान्द ब्रोदेल, जार्ज ड्यूबी, इमेनुएल ला राय लादूरी, रॉबर्ट मैन्द्रो, जॉक ला गॉफ तथा ऐसे ही अन्य

अनेक इतिहासकारों ने विषय और पद्धति में निरंतर नयी-नयी खोजों के जरिए समय-समय पर इतिहास-लेखन से जुड़े व्यवहार को पुनर्परिभाषित किया। इस स्कूल के इतिहासकारों ने आर्थिक संरचना का इतिहास, दीर्घकालीन विकास का इतिहास, मनोवृति का इतिहास, लघु इतिहास और सांस्कृतिक इतिहास जैसे तमाम क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान किया।

14.7 अभ्यास

1) उन संदर्भों का उल्लेख करें जिन्होंने अनाल स्कूल की स्थापना की।
2) इतिहास-लेखन की इस धारा के संस्थापक आप किन्हें मानते हैं? उनके कार्यों पर विचार करिए।
3) *अनाल* स्कूल के इतिहासकारों ने कई वर्षों के दौरान किस तरह के अभिनव काम किए? उदाहरण के साथ बताइये।

14.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

पीटर बर्क (सम.), *इकॉनोमी एंड सोसायटी इन अर्ली मेडिवल यूरोप : एसेज फॉर अनाल्स* (लंदन, 1972)

जॉर्ज जी इग्गर्स, *न्यू डायरेक्शन इन यूरोपियन हिस्टोरियोग्राफी* (मिडिल टाउन, 1975)

टी. स्टोइनोविच, *फ्रेंच हिस्टोरिकल मेथड : दि अनाल पैराडाइम* (इथाका, 1977)

एम. हर्सगोर, *'टोटल हिस्ट्री : दि अनाल स्कूल', जेरनल ऑफ कन्टेम्पोरेरी हिस्ट्री*, खंड-13, 1978

जॉक ला गॉफ और पीएरे नोरा (सम.), *कांस्ट्रक्टिंग दि पास्ट: एसेज इन हिस्टोरिकल मेथोडोलॉजी*, कैम्ब्रिज, (1985)

मॉरिश एमार्ड और हरबंश मुखिया, (सम.) *फ्रेंच स्टडिज इन हिस्ट्री*, दो खंडों में (ओरिएंट लांगमैन, नई दिल्ली, 1988-1990)

पीटर बर्क (सम.) *न्यू पर्सपेक्टिव्स ऑन हिस्टोरिकल रायटिंग*, (ऑक्सफोर्ड, 1992)

एम. ए. इतिहास

पाठ्यक्रमों की सूची

पाठ्यक्रम कोड	पाठ्यक्रम का शीर्षक	क्रेडिट
एम.एच.आई.-01	प्राचीन और मध्यकालीन् समाज	8
एम.एच.आई.-02	आधुनिक विश्व	8
एम.एच.आई.-03	इतिहास-लेखन	8
एम.एच.आई.-04	भारत की राजनीतिक संरचनाएं	8
एम.एच.आई.-05	भारतीय अर्थव्यवस्था का इतिहास	8
एम.एच.आई.-06	भारत में सामाजिक संरचनाओं का विकास	8
एम.एच.आई.-07	भारत में धार्मिक चिंतन और आस्था	8
एम.एच.आई.-08	भारत में पारिस्थितिकी और पर्यावरण का इतिहास	8

एम.एच.आई.- 3 : इतिहास-लेखन

खंड-वार पाठ्यक्रम संरचना

खंड - 01	इतिहास का परिचय
खंड - 02	पूर्व-आधुनिक परंपराएँ-1
खंड - 03	पूर्व-आधुनिक परंपराएँ-2
खंड - 04	आधुनिक काल में इतिहास-लेखन की दृष्टियाँ-1
खंड - 05	आधुनिक काल में इतिहास-लेखन की दृष्टियाँ-2
खंड - 06	भारतीय इतिहास-लेखन की विभिन्न दृष्टियाँ और विषय-1
खंड - 07	भारतीय इतिहास-लेखन की विभिन्न दृष्टियाँ और विषय-2